पिकेटी, मार्क्स और पूँजी

कैपिटल इन द ट्वेंटी फ़र्स्ट सेंचुरी संदर्भ और समालोचना

प्रसन्न कुमार चौधरी

समीक्षा-लेख

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थॉमस पिकेटी की बहुचर्चित कृति *कैपिटल इन द ट्वेंटी फ़र्स्ट सेंचुरी* की तुलना कार्ल मार्क्स की *पूँजी* से की जा रही है। कुछ समीक्षकों ने तो उसे 'कैपिटल 2.0' की संज्ञा तक से विभूषित कर दिया है। पिकेटी को 'मॉडर्न मार्क्स' अथवा 'बिगर दैन मार्क्स' भी बताया जा रहा है। प्रसन्न कुमार चौधरी ने अपनी कृति *पिकेटी, मार्क्स ऐंड कैपिटल* में एक विस्तृत और गहन समालोचना के ज़रिये पिकेटी की अध्ययन-पद्धति और निष्कर्षों को अर्थशास्त्रीय विमर्श के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए मार्क्स द्वारा *पूँजी* में व्यक्त किये गये विचारों की कसौटी पर कसा है। यह आलोचना पिकेटी के अध्ययन की उपयोगिता के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ-साथ उसकी विसंगतियों को भी रेखांकित करती है। अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक का यह हिंदी सार-संक्षेप लेखक ने स्वयं डॉ. सिद्धार्थ की सहायता से तैयार किया है।

अवश्यम्भावी विनाश और अतिशय उल्लास

बात एक कहानी से शुरू करते हैं। कहानी दावोस (स्विट्ज़रलैण्ड) स्थित एक सेनेटोरियम की है। वहाँ के अंतर्राष्ट्रीय सेनेटोरियम बर्गहॉफ़ में दुनिया भर से आये तपेदिक के मरीज़ बीमारियों तथा स्वास्थ्य; जीवन, प्रेम और मृत्यु; सभ्यता और मानवजाति के भविष्य, आदि पर बातें करते हुए अपना

वक़्त गुज़ारा करते थे। उनमें से दो व्यक्ति पूँजीवाद तथा बूर्ज्वा लोकतंत्र के भविष्य को लेकर प्रायः बेहद जज़्बाती बहसों में उलझ जाते थे। इनमें से एक थे लुदोविचो सेत्तेमब्रिनी— साहित्यिक, बुद्धिवादी और मानवतावादी। लुदोविचो बूर्ज्वा जनतंत्र के विश्वव्यापी विजयी अभियान की सम्भावनाओं को लेकर अत्यंत उत्साहित थे। वे फ्रीमेसन[1] भी थे।

बूर्ज्वा लोकतंत्र के प्रति सेत्तेमब्रिनी का अतिशय उल्लास उनकी दावेदारियों में भी व्यक्त होता था :

> तकनीकी प्रगति ने धीरे-धीरे प्रकृति को अपने अधीन कर लिया है। सड़कों और टेलिग्राफ़ के विकास के ज़रिये, जलवायु-संबंधी भिन्नताओं को कम करके, संचार के साधनों का सृजन कर पूरी दुनिया के लोगों को साथ लाने, उन्हें एक-दूसरे से परिचित कराने, सुलह-समझौतों के लिए सेतु का निर्माण करने, पूर्वग्रहों को ख़त्म करने, और अंततः मनुष्यों के बीच बंधुत्व क़ायम करने में इसने ख़ुद को सर्वाधिक विश्वसनीय एजेंट साबित किया है। ... ईसा मसीह ने सबसे पहले समानता और एकता का संदेश दिया था। छापाख़ाने ने इस संदेश का प्रचार-प्रसार किया, और अंततः फ्रांसीसी क्रांति ने आगे बढ़कर इसे क़ानून का दर्जा प्रदान किया। ...
>
> पुनर्जागरण और बौद्धिक पुनर्जीवन के ज़रिये हमने अतीत से जो उपलब्धियाँ हासिल की हैं, वे हैं— व्यक्तित्व, स्वतंत्रता और मनुष्यों के अधिकार। .... यूरोप के उन बचे-खुचे देशों में भी, जिन्हें अब तक अठारहवीं सदी के प्रबोधन का वरदान हासिल नहीं हुआ है, वह दिन दूर नहीं जब ताज उछाले जाएँगे और धर्मों की जीर्ण-शीर्ण इमारत मलबे में दफ़्न हो जाएगी। .... यूरोप में एक नया सबेरा आएगा— न्याय, विज्ञान और मानवीय तर्क के संदेश के साथ मानवीय बंधुत्व का सबेरा। ... अपने साथ यह लाएगा एक नया पवित्र गठबंधन— यूरोप के लोकतांत्रिक लोगों का गठबंधन। एक शब्द में कहें तो यह विश्व-गणतंत्र का सूत्रपात करेगा। ...

दूसरे व्यक्ति थे लियो नाफ़्ता। प्राचीन भाषाओं के प्रोफ़ेसर। एक ग्रामीण कसाई पिता और श्रमिक माता की संतान। युवावस्था में नाफ़्ता ने कार्ल मार्क्स की *पूँजी* का कोई सस्ता संस्करण पढ़ रखा था। मार्क्स की रचनाओं के ज़रिये ही उनका परिचय हिगेल से हुआ। जन्म से यहूदी नाफ़्ता ने बाद में रोमन कैथॅलिक धर्म अपना लिया और जेसुइट[2] बन गये।

वे पूँजीवाद के अवश्यम्भावी अंत के प्रति आश्वस्त थे। वे भी अपने मत के पक्ष में उतने ही दृढ़ थे :

> क्या तुम्हारा मैनचेस्टर उदारतावादी आर्थिक चिंतन की उस शाखा के अस्तित्व से अनभिज्ञ है जो अर्थशास्त्र पर मानव की विजय का पक्षपोषण करता है। और जिसके उसूल और उद्देश्य ईश्वरीय राज्य की अवधारणा से मेल खाते हैं ? ... चर्च के फ़ादर ... तमाम वाणिज्यिक गतिविधियों को मनुष्य की आत्मा और उसकी मुक्ति के लिए ख़तरा मानते थे, वे धन और वित्त से नफ़रत करते थे, और पूँजी के साम्राज्य को नरक की आग के लिए ईंधन की संज्ञा देते थे। ... वे हर तरह की सूदखोरी और सट्टेबाज़ी की निंदा करते थे। उनकी नज़र में प्रत्येक धनी व्यक्ति या तो चोर है या चोर का वारिस। इससे भी आगे बढ़कर, वे थॉमस एक्विना की तरह, विशुद्ध रूप से व्यापार को, मुनाफ़े के लिए, उत्पाद में बिना कोई परिवर्तन या परिवर्धन किये, ख़रीदने या बेचने को निंदनीय पेशा मानते

---

[1] फ्रीमेसन : एक गुप्त सम्प्रदाय जिसकी जड़ें चौदहवीं सदी के अंत में इंगलैण्ड तथा महाद्वीपीय यूरोप में सक्रिय संगतराशों के बिरादराना शिल्प-संघों में थीं. इस गुप्त सम्प्रदाय के अपने गुप्त कर्मकाण्ड थे जिनमें मुख्यतः संगतराशों और राजमिस्त्रियों के श्रम के औज़ारों— साहुल, गुनिया, परकार, तलमापक आदि— का प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया जाता था. इस सम्प्रदाय की बुनियादी सांगठनिक इकाई थी लॉज. गुप्त क्रियाकलापों तथा कर्मकाण्डों के कारण प्रायः सभी स्थापित चर्च— रोमन कैथॅलिक, प्रोटेस्टेंट, ग्रीक ऑर्थोडॉक्स— और सत्ताधारी वर्ग इस सम्प्रदाय को न सिर्फ़ संदेह की दृष्टि से देखते थे, बल्कि अपने अनुयायियों को इसका सदस्य बनने या उसके क्रियाकलापों में भाग लेने से मना करते थे. बहरहाल, यूरोप तथा अमेरिका की कई गण्यमान्य हस्तियाँ इस समुदाय से घनिष्ठ रूप से जुड़ी थीं. चर्च ऑफ़ इंग्लैण्ड के कई बिशप इस सम्प्रदाय के शुरुआती दिनों से ही इसके सदस्य थे.

[2] जेसुइट : 1534 ई. में सेंट इग्नेसियस लोयोला द्वारा स्थापित रोमन कैथोलिक 'सोसायटी ऑफ़ जीसस' के सदस्य. मिशनरी तथा शैक्षणिक कार्यों में लगा रोमन कैथॅलिक ईसाइयों का एक प्रमुख सम्प्रदाय.

थे। वे यह माँग करते थे कि किये गये वास्तविक श्रम के अनुपात से ही मुनाफ़े की मात्रा और सार्वजनिक सम्मान का निर्धारण किया जाना चाहिए। इस लिहाज़ से उनकी नज़र में श्रमिक और काश्तकार ही सम्मान के हक़दार थे। वे ज़रूरत के आधार पर उत्पादन के पक्षधर थे तथा 'मास प्रोडक्शन' को नीची निगाह से देखते थे।

अब सदियों की उपेक्षा के बाद इन उसूलों और पैमानों को कम्युनिज़म का आधुनिक आंदोलन पुनर्जीवित कर रहा है। ... डींग हाँकने वाली फ्रांसीसी क्रांति की कुल मिलाकर क्या नतीजा निकला था ? बस पूँजीवादी बूर्ज़्वा राज्य ? ... न्याय, संक्षेप में, एक खोखली लफ़्फ़ाजी थी, बूर्ज़्वा वाग्जाल का चालू मुहावरा। ... स्वतंत्रता व्यावसायिक नैतिकता के अमानवीय पतन से ऐतिहासिक तौर पर बँधी हुई थी, जिसमें आधुनिक उद्योगीकरण और सट्टेबाज़ी की सभी भयानकताएँ समाहित थीं, और साथ ही, धन और वित्त का पैशाचिक वर्चस्व भी।'[3]

इस उत्कट तर्क-वितर्क का अंत पिस्तौल के साथ द्वंद्व-युद्ध में हुआ। सेत्तेमब्रिनी ने नाफ़्ता पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। उसने हवा में गोली चला दी। नाफ़्ता ने ख़ुद अपने सिर में गोली मार ली जो उसकी कनपटी पर कालापन लिए लाल सूराख छोड़ गयी।

नाफ़्ता मर गया; सेत्तेमब्रिनी परीकथा वाले पूँजीवाद के प्रति अपने अतिशय लगाव के साथ बच गया। शीघ्र ही एक ऐतिहासिक विस्फोट ने धरती को हिला कर रख दिया; और *मैजिक माउंटेन* के नीचे ज्वाला भड़क उठी। प्रथम विश्व-युद्ध शुरू हो गया।

जब भी यह बहस होती, गुड हैम्बर्ग सोसायटी का एक युवा वारिस हैंस कास्टोर्प ख़ुद को मध्यस्थ की भूमिका में फँसा पाता। वह एक विरक्त इंजीनियर था। उसकी सहानुभूति यूँ तो सेत्तेमब्रिनी के विचारों के साथ थी, लेकिन वह प्राय: इन दोनों अतिवादी आग्रहों के बीच संतुलन बिठाने, उनके बीच सामंजस्य क़ायम करने को लेकर चिंतित रहा करता।

इसके आगे मेरी इच्छा टॉमस मन के जादुई संसार में और रुकने की नहीं है। अब हम *मैज़िक माउंटेन* की वादियों से यथार्थ जीवन के समतल मैदान में उतर सकते हैं।

> मार्क्स की *पूँजी* राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना थी। यदि पिकेटी की तरह कोई राजनीतिक अर्थशास्त्र की भावना को पुनर्जीवित करना चाहता है, तो उसे राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना की भावना का भी सामना करना होगा। यदि राजनीतिक अर्थशास्त्र नये समय में प्रवेश की चुनौती का सामना कर रहा है, तो राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना के समक्ष भी वही चुनौती है।

दावोस आज वर्ल्ड इकॉनॉमिक फ़ोरम के वार्षिक जलसों की मेजबानी करता है। इन जलसों में राष्ट्राध्यक्षों से लेकर कॉरपोरेट घरानों के मालिक और दुनिया भर के विभिन्न क्षेत्रों के गणमान्य लोग शिरकत करके विश्व पूँजीवाद के स्वास्थ्य पर चर्चा करते हैं।

---

[3] टॉमस मन (1999), *द मैजिक माउंटेन,* विंटेज बुक्स, लंदन, मूल जर्मन से एच टी लोवे-पोर्टर द्वारा अनूदित. यह कहानी इसी उपन्यास के विभिन्न पृष्ठों से उद्धृत की गयी है.

मार्क्स और कुजनेत्स

ऊपर कही गयी कहानी के क़रीब-क़रीब एक शताब्दी बाद थॉमस पिकेटी ने अपनी किताब *कैपिटल इन द ट्वेंटी-फ़र्स्ट सेंचुरी*[4] में पूँजीवाद के प्रति दो अतिवादी स्थितियों के बीच के मार्ग पर चलने की श्रमसाध्य कोशिश की है। उनकी नज़र में एक अतिवादी स्थिति मार्क्स की है। वे पूँजीवाद के 'अवश्यम्भावी विनाश' (एपोकैलिप्स) की पैरोकारी करते हैं। दूसरी सिमोन कुजनेत्स की है। वे 'परीकथाओं वाली या कम-से-कम सुखद अंतवाली' स्थिति की कल्पना करते हैं। पिकेटी कुजनेत्स की परीकथाओं में विश्वास नहीं करते, लेकिन उनके अध्ययन का ज़ोर पूँजीवाद के उस 'अवश्यम्भावी विनाश' को टालने पर है जिसका, उनकी नज़र में, मार्क्सवाद पक्षपोषण करता है।

पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स के विश्लेषण को 'एपोकैलिप्स' (सर्वनाश) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है या नहीं, इसकी हम आगे चर्चा करेंगे। बहरहाल, जहाँ तक कुजनेत्स के विश्लेषण का सवाल है, तो शुरू से ही इसकी विश्वसनीयता संदिग्ध थी। पिछली शताब्दी के पचास के दशक में, शीत-युद्ध के शुरुआती दिनों में, जब अमेरिका में मैक्कार्थीवाद[5] अपने चरम पर था तब सिमोन कुजनेत्स का निष्कर्ष सोवियत कम्युनिज़म के प्रतिकार की राजनीतिक परियोजना के अंग के तौर पर पेश किया गया। उसका मक़सद पूँजीवाद की उज्ज्वल छवि प्रस्तुत करना था। उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की थी कि असमानता पूँजीवाद का अपरिहार्य अंग नहीं है, उद्योगीकरण और आर्थिक विकास के क्रम में असमानता की खाई असल में कम होती जाती है, और असमानता में कमी की यह प्रवृत्ति 1913 और 1948 के बीच संयुक्त राज्य अमेरिका में सचमुच देखी गयी है।

पिकेटी ने इस बात को ठीक ही रेखांकित किया है कि :

> 1914 और 1945 के बीच सभी धनी देशों में आय की असमानता में हम जो तेज़ गिरावट देखते हैं वह अव्वल तो विश्व-युद्धों, और उसके चलते हिंसक आर्थिक तथा राजनीतिक धक्कों का अपरिहार्य परिणाम था। ... उसका कुजनेत्स द्वारा वर्णित अंतर-क्षेत्रीय गतिशीलता की शांतिपूर्ण प्रक्रिया से कुछ ख़ास लेना-देना नहीं था। ... 1953 में अपनी किताब में कुजनेत्स ने जो आँकड़े प्रस्तुत किये, वे अचानक एक शक्तिशाली राजनीतिक हथियार बन गये। अपने सिद्धांतीकरण की अत्यंत काल्पनिक प्रकृति से वे अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। अपने एक भाषण में उन्होंने अपने श्रोताओं को याद दिलाना ज़रूरी समझा कि उनकी आशावादी भविष्यवाणियों का उद्देश्य अल्पविकसित देशों को 'स्वतंत्र दुनिया' (फ़्री वर्ल्ड) के दायरे में बनाए रखना भर था। इस तरह 'कुजनेत्स कर्व' का सिद्धांत बहुत हद तक शीतयुद्ध का परिणाम था।' कुजनेत्स ने स्वयं कहा है : 'यह (उनका निष्कर्ष) शायद पाँच प्रतिशत प्रयोगाश्रित सूचना और पचानवे प्रतिशत अनुमान पर आधारित है— यह भी हो सकता है कि इसका कुछ हिस्सा अपने निजी इच्छाजनित विश्वास से दूषित हो।[6]

अपने इन दो-टूक आकलनों के बावजूद यह देख कर आश्चर्य होता है कि पिकेटी अपनी किताब में कुजनेत्स को इतनी जगह और महत्त्व क्यों देते हैं।

कुजनेत्स के 'अतिशय उल्लास' को लेकर पिकेटी जहाँ बिना किसी लाग-लपेट के अपनी राय रखते हैं, वहीं 'अवश्यम्भावी विनाश' की कथित रूप से मार्क्सवादी प्रस्थापना को लेकर बात करते समय बचाव की मुद्रा में आ जाते हैं। वे लिखते हैं :

> अपनी सीमाओं के बावजूद विविध संदर्भों में मार्क्स का विश्लेषण प्रासंगिक बना हुआ है। पहला,

---

[4] थॉमस पिकेटी (2014), *कैपिटल इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी,* द बेल्कनैप प्रेस ऑफ़ हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसेचुसेट्स, लंदन, मूल फ्रेंच से ऑर्थर गोल्डहैमर द्वारा अनूदित. पिकेटी के सारे उद्धरण इसी किताब से लिए गये हैं.

[5] मैक्कार्थीवाद : 1950 के दशक में अमेरिका में वाम तथा कम्युनिस्ट-रुझान वाले लोगों और उनके कथित समर्थकों के ख़िलाफ़ एक बड़ा अभियान चलाया गया। इस अभियान के तहत अनेक गण्यमान्य बुद्धिजीवियों, लेखकों, कलाकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रताड़ित किया गया, मनगढ़ंत आरोपों में उन्हें गिरफ़्तार किया गया तथा सेवाओं से बर्ख़ास्त कर दिया गया. इस घोर अलोकतांत्रिक मुहिम को उसके मुख्य संचालक अमेरिकी राजनीतिज्ञ जोसेफ़रेमण्ड मैक्कार्थी (1908-1957) के नाम पर मैक्कार्थीवाद कहा जाता है.

[6] पिकेटी, वही, 'इंट्रोडक्शन'/ 'कुजनेत्स कर्व'.

मार्क्स की 'पूँजी' को 'चुप्पी के षड्यंत्र' का सामना करना पड़ा। ... लेकिन शीघ्र ही यह किताब श्रमिक वर्ग / समाजवादी / कम्युनिस्ट आंदोलन से आवयविक रूप से जुड़ गयी। पिकेटी की किताब छपते ही 'बेस्ट सेलर' की श्रेणी में दाख़िल हो गयी। **जिस किताब को चुप्पी के षड्यंत्र का सामना करना पड़ा, उसकी गूँज इक्कीसवीं सदी के अर्थशास्त्रियों के कानों में अब भी सुनाई दे रही है।** बहरहाल, शुरू से ही एक 'ब्लॉकबस्टर' किताब के भविष्य के बारे में हम बस अनुमान ही लगा सकते हैं।
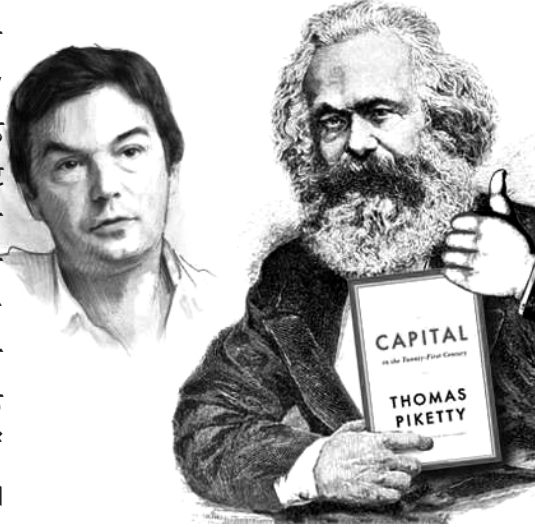
> (औद्योगिक क्रांति के दौरान सम्पत्ति के अभूतपूर्व संकेंद्रण की चिंताओं से संबंधित) एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न से शुरू करते हुए, उन्होंने अपने पास उपलब्ध साधनों से उसका समाधान ढूँढ़ने की कोशिश की— आज के अर्थशास्त्री उनके उदाहरण से प्रेरणा लें तो बेहतर होगा। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि मार्क्स द्वारा प्रस्तावित असीम संचय के सिद्धांत में एक गहरी अंतर्दृष्टि निहित है और वह इक्कीसवीं सदी के अध्ययन के लिए उतनी ही प्रामाणिक है जितनी वह उन्नीसवीं सदी के लिए थी। ... ख़ासकर 1980 और 1990 के दशक से यूरोप के धनी देशों और जापान में निजी सम्पत्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय के अनुपात में जिस ऊँचे स्तर पर जा पहुँची है, वह सीधे तौर पर मार्क्सवादी तर्क को ही प्रतिबिम्बित करती है।[7]

यहाँ मैं अनंत या असीम शब्द की जगह अवहनीय (अनसस्टेनेबल) शब्द का प्रयोग करना चाहूँगा। यद्यपि मार्क्स 'अंतहीन' या 'सीमारहित' शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, तथापि इसे संकट के मियादी चक्र और सामाजिक क्रांति की मार्क्स की प्रस्थापनाओं के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। पिकेटी जिसे 'सामाजिक तौर पर अस्थिरकारी' कहते हैं, उसकी निर्मिति इसी अवहनीयता से होती है।

अब हम 'अवश्यम्भावी विनाश' और 'अतिशय उल्लास' की दुनियाओं से निकल कर पिकेटी की अध्ययन-पद्धति पर विचार कर सकते हैं।

आँकड़े और द्वंद्वात्मक पद्धति

फ्रांस की बौद्धिक-सैद्धांतिक परम्परा बेहद समृद्ध और गौरवशाली है। मोंटेन (1533-1592) और रेने देकार्त (1596-1650) से शुरू होकर इस परम्परा में फ्रांसीसी प्रबोधन की पथ-प्रदर्शक हस्तियों की पूरी सूची शामिल है।

इस पृष्ठभूमि में, ज़ाहिर है, युवा पिकेटी का सपना ईकोल द हॉत एट्यू एन साइंस सोसियाल (समाज-विज्ञान शोध संस्थान) में अध्यापन का था। पिकेटी लिखते हैं, 'फ्रांस में शैक्षणिक अर्थशास्त्री होने का एक बड़ा लाभ है। यहाँ शैक्षणिक-बौद्धिक जगत में या फिर राजनीतिक और वित्तीय अभिजन के बीच अर्थशास्त्र को ऊँची प्रतिष्ठा हासिल नहीं है। इसलिए उन्हें अन्य ज्ञानानुशासनों के प्रति हिकारत

[7] वही, 'इंट्रोडक्शन' / 'मार्क्स : द प्रिंसिपल ऑफ़ इनफ़ाइनाइट एकुमुलेशन'.

के भाव को, और इस तथ्य के बावजूद कि वे किसी भी विषय के बारे में लगभग कुछ नहीं जानते, अपने ज्ञान की अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक वैधता के वाहियात दावे को परे रखना पड़ता है।' अपनी सैद्धांतिक और अवधारणात्मक पद्धति की व्याख्या करते हुए पिकेटी 'ऐतिहासिक अनुसंधान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ सहयोग' की क़ीमत पर ... गणित के प्रति 'बचकाने भावावेग' की कड़ी आलोचना करते हैं। 'अर्थशास्त्री प्राय: गणित के ऐसे छोटे-मोटे सवालों में उलझे रहते हैं जिनमें सिर्फ़ उन्हीं की दिलचस्पी होती है। जिस दुनिया में हम जी रहे हैं, उसके सामने उपस्थित जटिल सवालों का समाधान खोजे बिना गणित के प्रति यह सम्मोहन वैज्ञानिकता का चोला ओढ़ने का एक आसान तरीक़ा बन जाता है।' आख़िर में, वे अपने अध्ययन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं : 'वे समाज को संगठित करने के सबसे बेहतर तरीक़े और एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था हासिल करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त संस्थाओं और नीतियों के बारे में चलने वाली बहस में विनम्रतापूर्वक अपना योगदान करना चाहते हैं।' इसके अलावा, वे 'क़ानून के शासन के अंतर्गत कुशलतापूर्वक तथा प्रभावी रूप में न्याय को स्थापित होते देखना चाहते हैं।' वे चाहते हैं कि 'यह सभी पर समान रूप से लागू हो और इसे लोकतांत्रिक संवाद के मातहत सार्विक रूप से मान्य विधानों के ज़रिये हासिल किया जाए।'[8]

बिग डाटा अध्ययन प्रणाली

फ़्रांसीसी बौद्धिक परम्परा और फ़्रांसीसी सिद्धांतकारों के प्रति कुछ हद तक भावनात्मक लगाव, गणित के प्रति बचकाने सम्मोहन की आलोचना, और अन्य समाज-विज्ञानों के साथ सहयोग के प्रति अपनी उत्सुकता के बावजूद पिकेटी अपनी इस कृति में बिग डाटा अध्ययन पद्धति का ही अनुसरण करते हैं। वे सचेत रूप से 'क्यों' से बचते हुए दिखते हैं, और 'क्या' की व्याख्या से ही संतुष्ट रहते हैं। वे हमें यह तो बताते हैं कि (दो शताब्दियों के लम्बे कालखण्ड के) आँकड़ों से पूँजी के युग में असमानता की गतिकी के बारे में पता चलता है कि $r > g$: आर यानी पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर जो जी यानी वृद्धि की दर से ज़्यादा रही है। लेकिन ऐसा क्यों है— इसकी पड़ताल में जाने से वे परहेज़ करते हैं। वे इस प्रश्न पर न तो प्रचलित सिद्धांतों अथवा अवधारणाओं की आलोचनात्मक समीक्षा करते हैं, और न ही अपनी ओर से ऐसी कोई अवधारणा या सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं जिसकी उपर्युक्त आँकड़ों की रोशनी में परीक्षा की जा सके। संक्षेप में, वे अवधारणाओं अथवा सिद्धांतों या विवेचन के क्षेत्र में जाने का सचेत रूप से कोई जोखिम नहीं मोल लेते— वे सह-संबंधों से ही संतुष्ट हैं और कारण-कार्य विश्लेषण की ज़रूरत महसूस नहीं करते।

डिजिटल युग ने अभूतपूर्व पैमाने पर, काफ़ी सस्ते और सरल रूप में, आँकड़ों के संग्रहण, प्रसंस्करण और विश्लेषण को सम्भव बना दिया है। पिकेटी के अनुसार :

> हमारे जीने के तौर-तरीक़ों और दुनिया के साथ हमारे अंतर्संबंधों के समक्ष बिग डाटा युग ने चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि समाज के लिए सामान्य सह-संबंधों के हक़ में कारण-कार्य सिद्धांत के प्रति मोह को कुछ हद तक त्यागना ज़रूरी होगा : सिर्फ़ 'क्या' जानना, 'क्यों' नहीं। यह शताब्दियों से स्थापित हमारे आचरणों को पलट देने के समान है। हम जिस रूप में यथार्थ जगत को जानते रहे हैं और अपने फ़ैसले लेते रहे हैं, उसकी सर्वाधिक बुनियादी समझ को ही यह चुनौती देता है। परिमाण में परिवर्तन कर हम सार-वस्तु बदल दे रहे हैं। ... मात्रात्मक परिवर्तन हमें गुणात्मक परिवर्तन की ओर ले जा रहा है। ... जैसे-जैसे हम अवधारणा-चालित विश्व से डाटा-चालित विश्व में संक्रमण करते जाएँगे, वैसे-वैसे हम यह सोचने की ओर प्रवृत्त होंगे कि हमें अब सिद्धांतों की कोई ज़रूरत नहीं रह गयी है।[9]

---

[8] वही, 'इंट्रोडक्शन' / 'द थियरिटिकल फ्रेमवर्क'.

[9] विक्टर मेयर-शोनबर्गर और केनेथ कुकिएर (2013), *बिग डाटा,* जॉन मरे, लंदन, '1. नाउ' : 8.

2008 में *वायर्ड* पत्रिका के प्रधान सम्पादक क्रिस ऐंडरसन ने ज़ोर-शोर से यह घोषणा की कि 'आँकड़ों के सैलाब ने वैज्ञानिक पद्धति को कबाड़ में बदल दिया है।' 'द पेटाबाइट एज' शीर्षक अपनी आवरण कथा में उन्होंने इस स्थिति को 'सिद्धांत के अंत' जैसी परिघटना की संज्ञा दी। वैज्ञानिक खोज की परम्परागत प्रक्रिया इस प्रकार काम करती है — एक अवधारणा लीजिए और कारण-कार्य संबंधों के मॉडल का प्रयोग करते हुए यथार्थ स्थितियों में उस अवधारणा का परीक्षण कीजिए। ऐंडरसन ने दलील दी कि 'इस वैज्ञानिक पद्धति का स्थान अब सिद्धांतविहीन, शुद्ध सह-संबंधों के सांख्यिकीय विश्लेषण ने ले लिया है।'[10] अनुसंधान की तकनीक में हाल के दिनों में हुए सुधारों के प्रति ऋणी होने की बात पिकेटी ने ठीक ही स्वीकार की है। लेकिन आशा है कि वे ऐंडरसन के इन विचारों का पक्षपोषण नहीं करते हैं।

बहरहाल, बिग डाटा विशेषज्ञ विक्टर मेयर-शोनबर्गर और केनेथ कुकिएर कारण-कार्य और सह-सम्बद्धता, क्यों और क्या, एनेलॉग (रेखीय सादृश्य) और ऐलगॉरिद्म (कलन) को परस्पर विरोधी श्रेणियों के रूप में नहीं देखते। वे स्वीकार करते हैं कि बिग डाटा ख़ुद सिद्धांतों पर आधारित है (सांख्यिकी सिद्धांत, गणितीय और कम्प्यूटर विज्ञान से संबंधित सिद्धांत, आदि)। बिग डाटा विश्लेषण भी सिद्धांतों पर आधारित है (डाटा चयन से संबंधित सिद्धांत)— 'ये सिद्धांत ही हमारी पद्धतियों और परिणामों को आकार देते हैं।' निष्कर्ष के तौर पर, वे कहते हैं, 'हमें अब भी कारण-कार्य अध्ययनों की तथा कुछ निश्चित मामलों में सावधानीपूर्वक चुने गये डाटा के साथ नियंत्रित प्रयोगों की ज़रूरत है। ... लेकिन रोज़मर्रा की अनेक ज़रूरतों के लिए 'क्यों' की जगह 'क्या' जानना ही पर्याप्त है। और बिग डाटा सह-संबंध ऐसे नये क्षेत्रों की ओर भी संकेत कर सकता है जहाँ कारण-कार्य संबंधों की पड़ताल आवश्यक हो।'[11]

द्वंद्वात्मक पद्धति

यहाँ 'क्यों' और 'क्या', 'कारण-कार्य' और 'सह-संबंध', 'एनेलॉग' और 'ऐलगॉरिद्म' के बीच द्विविभाजन का ज़िक्र करना समीचीन होगा। पिकेटी इन द्विविभाजनों में बाद वाली श्रेणी (क्या, सह-संबंध, और ऐलगॉरिद्म) का चुनाव करते हैं। इसके चलते वे क्यों और क्या, कारण-कार्य और सह-संबंध, रेखीय सादृश्य और कलन विधि को उनके अंतर्संबंधों में, उनकी गतिकी में, अनवरत बदलती उनकी स्थितियों में, और उनके अंतर्गुंथन में ग्रहण करने के उद्देश्य से द्वंद्वात्मक पद्धति को आगे बढ़ाने के अवसर से चूक जाते हैं। वे उस (ग़ैर-द्वंद्वात्मक) पद्धति का शिकार हो जाते हैं जो इन द्वैत श्रेणियों को निरपेक्ष रूप से परस्पर विरोधी श्रेणियों के रूप में देखती है (जिनके बीच कोई आवाजाही नहीं होती)— 'क्यों' बनाम 'क्या', 'कारण-कार्य' बनाम 'सह-संबंध', 'एनेलॉग' बनाम 'ऐलगॉरिद्म'। इस प्रकार वे उस महान फ्रांसीसी परम्परा से परे हट जाते हैं जिसने चिंतन के विज्ञान के विकास में अहम भूमिका निभाई थी।

बिग डाटा अध्ययन पद्धति की वंशावली को हम जॉन लॉक के अनुभववाद (इम्पिरीसिज़्म) से शुरू कर ऑगस्त कॉम्त के प्रत्यक्षवाद (पॉजिटिविज़्म), विलियम जेम्स के व्यवहारवाद या परिणामवाद (प्रैगमेटिज़्म) और जॉन डिवी के साधनवाद (इंस्ट्रूमेंटलिज़्म) में देख सकते हैं। (यहाँ हम बीसवीं सदी के प्रत्यक्षवाद की विभिन्न धाराओं-उपधाराओं का ज़िक्र करना ज़रूरी नहीं समझते।)

बिग डाटा अध्ययन-पद्धति दरअसल उपर्युक्त दार्शनिक परम्परा का ही डिजिटलयुगीन अवतार है।

पिकेटी ख़ुद लिखते हैं कि बर्लिन की दीवार गिराए जाने के समय (1989), अठारह वर्ष की

---

[10] वही : 4, 'कोरिलेशन': 70.
[11] वही : 71.

उम्र में ही वे 'पूँजीवाद-विरोध की परम्परागत किंतु अकर्मण्य लफ़्फ़ाज़ी' के ख़िलाफ़ जीवन भर के लिए प्रतिरक्षित हो चुके थे। लगता है यह प्रतिरक्षा, सिद्धांतों तथा अवधारणाओं के प्रति शंका उत्पन्न कर, कुछ ज़्यादा और गहरा असर कर गयी। ये शंका और पूर्वग्रह तब और परवान चढ़े, जब बाइस वर्ष की उम्र में बोस्टन में उन्हें 'अमेरिकी सपने को जीने का' अवसर मिला।

पिकेटी के साथ न्याय करते हुए यहाँ यह दर्ज करना ज़रूरी है कि किताब के विभिन्न अध्यायों में समय-समय पर उनके अंदर का (अमेरिकन से सर्वथा भिन्न) सच्चा फ्रांसीसी बुद्धिजीवी अपना दावा जताता और आभा बिखेरता दिख जाता है (ख़ासकर तब जब वे यूरोजोन के संकट पर लिख रहे होते हैं)।

आँकड़ों की भूमिका को कम करके नहीं आँका जाना चाहिए। पिकेटी का अध्ययन दुनिया भर के क़रीब तीस शोधकर्ताओं के वर्षों के संयुक्त कार्य के परिणामस्वरूप तैयार किये गये 'वर्ल्ड टॉप इनकम डेटाबेस' (डब्ल्यूटीआईडी) पर आधारित है। किताब की मुख्य विषय-वस्तु भी इसी शोध-अध्ययन के आँकड़ों तथा निष्कर्षों से संबंधित है। पिकेटी का यह अध्ययन हमारे समय में आय की असमानता की समझ क़ायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिर भी, चूँकि पूँजी सामाजिक संबंधों का संजाल है, इसलिए वितरणमूलक अन्याय ('क्यों') का अन्वेषण करना उतना ही, कहा जाए तो ज़्यादा ही, महत्त्वपूर्ण है जितना आय की असमानता की डाटा-आधारित गतिकी ('क्या') का अन्वेषण करना।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि जहाँ तक पिकेटी की अध्ययन-पद्धति का सवाल है, एक ओर शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र की आत्मा को पुनर्जीवित करने की उनकी पवित्र इच्छा, और दूसरी ओर व्यवहार में बिग डाटा पद्धति को उनके द्वारा दी गयी प्राथमिकता— उनकी किताब की यह पहली बड़ी असंगति है।

पूँजी : सामाजिक और आत्म-प्रसरणशील

पूँजी अब गर्भवती है।

—गेटे, *फाउस्ट*, भाग-1, दृश्य-5

अब हम पूँजी, श्रम, और पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर (रेट ऑफ़ रिटर्न ऑन कैपिटल, r) के बारे में थॉमस पिकेटी की परिभाषा से शुरू करेंगे। आख़िरकार, 'पूँजी' और 'पूँजी पर प्रतिप्राप्ति' किताब की मुख्य विषय-वस्तु है।

पिकेटी लिखते हैं :

> इस किताब में पूँजी की परिभाषा ऐसी समस्त ग़ैर-मानवीय सम्पदा के रूप में दी गयी है जिस पर स्वामित्व क़ायम किया जा सकता है और जिसका किसी बाज़ार में लेन-देन किया जा सकता है। पूँजी में (रीयल एस्टेट समेत) वास्तविक सम्पत्ति के सभी रूपों के साथ-साथ वित्तीय और पेशेवर पूँजी (प्लांट, आधारभूत संरचना, मशीनरी, पेटेंट आदि) शामिल है जिसका इस्तेमाल कम्पनियों और सरकारी एजेंसियों द्वारा किया जाता है। ... ग़ैर-मानवीय पूँजी में, जिसे इस किताब में मैं सिर्फ़ 'पूँजी' कहूँगा, धन के ऐसे सभी रूप शामिल हैं जो व्यक्तियों (या व्यक्तियों के समूहों) के स्वामित्व में हो सकते हैं और जिन्हें बाज़ार में स्थायी तौर पर या तो हस्तांतरित किया जा सकता है या फिर जिनकी ख़रीद-बिक्री की जा सकती है। व्यवहार में पूँजी का स्वामित्व निजी व्यक्तियों के हाथों में हो सकता है (इसे हम निजी पूँजी कहेंगे) अथवा सरकार या सरकारी एजेंसियों के हाथों में (इसे हम सार्वजनिक पूँजी कहेंगे)। बीच के कुछ रूप भी हो सकते हैं। ... पूँजी कोई स्थिर अवधारणा नहीं है : वह प्रत्येक समाज के विकास की अवस्था और उसमें प्रचलित सामाजिक संबंधों को प्रतिबिम्बित करती है। ...
>
> मैंने 'पूँजी' और 'धन' शब्दों का इस्तेमाल अदल-बदल कर समानार्थक रूप में किया है।

> निष्कर्ष के तौर पर, मैंने 'राष्ट्रीय धन' अथवा 'राष्ट्रीय पूँजी' को किसी विशेष समय में किसी विशेष देश की सरकार और उसके निवासियों के स्वामित्व वाली सभी चीज़ों के कुल बाज़ार मूल्य के रूप में परिभाषित किया है, बशर्ते कि किसी बाज़ार में उनकी ख़रीद-बिक्री की जा सके। इसमें कुल वित्तीय देनदारियों (ऋण) को घटा कर सभी ग़ैर-वित्तीय परिसम्पत्तियाँ (भूमि, मकान, व्यावसायिक इन्वेंटरी, अन्य इमारत, मशीनरी, आधारभूत संरचना, पेटेंट, और प्रत्यक्ष स्वामित्व वाली अन्य व्यावसायिक परिसम्पत्तियाँ) और वित्तीय परिसम्पत्तियाँ (बैंक खाता, म्युचुअल फण्ड, बॉण्ड्स, स्टॉक्स, सभी प्रकार के वित्तीय निवेश, बीमा पॉलिसी, पेंशन फण्ड आदि) शामिल हैं। पूँजी एक स्टॉक है। यह किसी समय विशेष में स्वामित्व वाली कुल सम्पत्ति के बराबर है। यह पूर्व के वर्षों में संचित अथवा अधिगृहीत कुल सम्पत्ति से बना है।'[12]

पिकेटी शीर्ष प्रबंधकों और उद्यमियों को श्रमिकों की श्रेणी में रखते हैं। इस प्रकार, उन्हें दी जाने वाली 'सुपर सैलेरी' (अति-उच्च वेतन) को वे श्रम-आमदनी में शामिल करते हैं।

पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर (r) के बारे में वे लिखते हैं :

> पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर अनेक आर्थिक सिद्धांतों की केंद्रीय अवधारणा है। ख़ासकर, मार्क्सवादी विश्लेषण मुनाफ़े की गिरती दर पर ज़ोर देता है— यह एक ऐसा ऐतिहासिक पूर्वानुमान था जो पूरी तरह ग़लत साबित हुआ। फिर भी इसमें एक रोचक अंतर्ज्ञान समाहित था। बहरहाल, पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर पूँजी से मिलने वाले कुल सालाना लाभ द्वारा मापी जाती है— चाहे उसका क़ानूनी रूप (मुनाफ़ा, किराया, ब्याज, लाभांश, रॉयल्टी, पूँजीगत लाभ, आदि) कुछ भी क्यों न हो। इसे निवेशित पूँजी के मूल्य के प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इसीलिए यह मुनाफ़े की दर की तुलना में व्यापक, और ब्याज की दर की तुलना में तो और भी व्यापक धारणा है, हालाँकि पूँजी पर प्रतिप्राति की दर में उपर्युक्त दोनों श्रेणियाँ सन्निहित हैं।[13]
>
> अपनी निर्मिति में, प्रतिप्राप्ति की यह औसत दर बिल्कुल भिन्न प्रकार की सम्पत्तियों और निवेशों पर मिलने वाली प्रतिप्राप्तियों का कुल योग है।[14]

अंत में वे नतीजा निकालते हैं कि पूँजीवाद का केंद्रीय अंतर्विरोध $r > g$ (पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर के वृद्धि-दर से ज़्यादा होने) के रूप में प्रकट होता है।

पिकेटी की पूँजी की परिभाषा में नया कुछ भी नहीं है। यह बुनियादी रूप से शास्त्रीय अर्थशास्त्र के आरम्भिक दिनों से ही अर्थशास्त्रियों की एक शाखा में प्रचलित परिभाषा का अनुसरण करती है। यह पूँजी के प्रकट रूपों में ही उलझ कर रह जाती है और उन्हें ही सब कुछ मान बैठती है। 'औसत का अंध परिचालन, आभासी डाटा, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का वह 'रहस्य' है जिसका आविष्कार ही पूँजी के आंतरिक अंतर्संबधों की पर्दादारी के लिए किया गया है।'[15]

प्रचलित आर्थिक साहित्य में पूँजी को आम तौर पर ऐसी संचित सम्पत्ति के रूप में, 'संचित अथवा पूँजीकृत ब्याज' के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है, जिसकी ख़रीद-बिक्री चलती रहती है।

'बचाई हुई पूँजी के हर अंश पर चक्रवृद्धि ब्याज के साथ पूँजी इतनी सर्वग्राही होती है कि संसार की वह सारी सम्पदा, जिससे आय प्राप्त की जाती है, कभी की पूँजी का ब्याज बन चुकी है।'[16] द *इकॉनॉमिस्ट* (लंदन) ने 1851 में ही पूँजी को इस रूप में परिभाषित किया था।

बहरहाल, चूँकि पिकेटी इस संदर्भ में मार्क्स का हवाला देते हैं, इसीलिए यह ज़रूरी है कि इन

---

[12] पिकेटी, वही, अध्याय-1, 'इनकम ऐंड ऑउटपुट'.

[13] वही.

[14] वही, अध्याय-6, 'द कैपिटल-लेबर स्प्लिट'.

[15] कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स (1988), *कलेक्टेड वर्क्स,* खण्ड 43, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, 'मार्क्स टु लुडविग कुगेलमन, लंदन, 11 जुलाई, 1868 : 69.

[16] कार्ल मार्क्स (1977), *कैपिटल,* खण्ड 1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, अध्याय-24, 'कन्वर्ज़न ऑफ़ सरप्लस वैल्यु इनटु कैपिटल': 551 (फ़ुटनोट 4). मार्क्स ने यह उद्धरण *इकॉनॉमिस्ट* के जुलाई 19, 1851 अंक से लिया है.

सभी मुद्दों (पूँजी की परिभाषा, शीर्ष प्रबंधकों और उद्यमियों के अति-उच्च वेतन को श्रम-आय में शामिल करने, पूँजी पर प्रतिप्राप्ति, और पूँजी के बुनियादी अंतर्विरोध) के बारे में (यथासम्भव मार्क्स के शब्दों में ही) मार्क्स के विचारों का सारांश प्रस्तुत किया जाए। इस प्रक्रिया में पिकेटी की प्रस्थापनाओं की विसंगतियाँ भी उद्घाटित होंगी।

पूँजी : आत्म-प्रसरणशील मूल्य-रूप

मार्क्स आत्म-प्रसरणशील मूल्य-रूप के अर्थ में पूँजी को परिभाषित करते हैं। आत्म-विस्तार के रूप में विनिमय की जाने वाली सामाजिक सम्पत्ति ही सामाजिक पूँजी है। आत्म-विस्तार करने वाला यह मूल्य-रूप पूँजी के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप अख़्तियार करता है। औद्योगिक पूँजी के उद्‌भव का वर्णन करने के क्रम में मार्क्स यह दिखलाते हैं कि किस प्रकार मुद्रा के स्वामियों का सामना बाज़ार में एक ऐसे माल से होता है जिसका उपयोग-मूल्य मूल्य का स्रोत होने का विशिष्ट गुण रखता है— यानी अपने उपयोग के दौरान मूल्य पैदा करता है। वह माल है श्रम-शक्ति। ख़ास बात यह है कि श्रम-शक्ति अपने श्रमकाल के दौरान जो मूल्य पैदा करती है, वह ख़ुद उसके (यानी श्रम-शक्ति के) मूल्य की तुलना में काफ़ी ज़्यादा होता है। श्रम द्वारा सृजित मूल्य > श्रम-शक्ति का मूल्य। श्रम के मूल्य और श्रम-शक्ति के मूल्य का यह अंतर ही अतिरिक्त मूल्य है, मुनाफ़े का और पूँजी के संचय का बुनियादी स्रोत है, पूँजी के आत्म-प्रसार का आधार है।[17]

पूँजी का संचय

> पूँजी कोई स्थिर, जड़ श्रेणी नहीं है। वह सामाजिक सम्पत्ति का ऐसा हिस्सा है जो निरंतर उतार-चढ़ाव से गुज़रता रहता है। अतिरिक्त मूल्य राजस्व और अतिरिक्त पूँजी में विभाजित होता रहता है। ... एक सिरे पर सम्पत्ति का संचय, इस प्रकार, एक ही समय में दूसरे सिरे पर पूँजी के रूप में अपने उत्पाद का सृजन करने वाले वर्ग के लिए विपन्नता, श्रम-दासता की पीड़ा, अज्ञानता, क्रूरता, मानसिक अध:पतन भी है।
>
> पूँजी के रूप में मुद्रा का परिचालन अपने आप में लक्ष्य बन जाता है, क्योंकि निरंतर चलने वाले इसी परिचालन के ज़रिये लाभ का विस्तार होता है। पूँजी के परिचालन की, इस प्रकार, कोई सीमा नहीं है। ... इस गति अथवा प्रक्रिया का सचेत प्रतिनिधि पूँजीपति बन जाता है। उपयोग-मूल्यों का सृजन इस पूँजीपति का कभी भी वास्तविक उद्देश्य नहीं होता, न ही किसी एक सौदे से हासिल मुनाफ़ा। उसका एकमात्र उद्देश्य होता है मुनाफ़ा कमाने की अनथक, अंतहीन प्रक्रिया। ...

इस प्रकार, मार्क्स के अनुसार, पूँजी संचय का बुनियादी कारण आत्म-प्रसरणशील मूल्य-रूप के रूप में पूँजी की परिभाषा में ही अंतर्निहित है। बेमोल श्रम ही इसका अंतिम स्रोत है।[18]

> पर्याप्त मुनाफ़ा मिले तो पूँजी धृष्ट हो जाती है; निश्चित दस फ़ीसदी मुनाफ़े में वह कहीं भी निवेशित होने को तैयार रहती है; बीस फ़ीसदी मुनाफ़ा उसमें उत्कंठा पैदा करता है; पचास प्रतिशत मुनाफ़ा ढिठाई; मुनाफ़ा सौ फ़ीसदी हो तो तमाम मानवीय क़ानूनों को पैरों तले रौंदने को तैयार हो जाती है; तीन सौ फ़ीसदी और उससे अधिक मुनाफ़ा हो तो ऐसा कोई अपराध नहीं जिसे करने से वह हिचकिचाए, और कोई ऐसा जोखिम नहीं जिसे उठाने को वह तैयार न हो, भले ही ख़ुद उसके मालिकों को फाँसी पर ही क्यों न चढ़ना पड़े। अगर उथल-पुथल और कलह से मुनाफ़ा हो, तो वह दोनों को बढ़ावा देगी। यहाँ हमने जो कुछ कहा है, उसे तस्करी तथा दास-व्यापार ने पूरी तरह प्रमाणित किया है।[19]

---

[17] वही, अध्याय-6, 'द बाइंग ऐंड सेलिंग ऑफ़ लेबर पॉवर': 164-172.

[18] वही.

[19] वही, अध्याय-21, 'जेनेसिस ऑफ़ इंडस्ट्रियल कैपिटलिस्ट' : 712 (फ़ुटनोट 1). मार्क्स ने यहाँ टी.जे. डनिंग (1799-1873) की किताब, *ट्रेड्स यूनियन्स ऐंड स्ट्राइक्स : देअर फिलॉसॅफ़ी ऐंड इंटेंशन,* लंदन, 1860, से उद्धरण दिया है.

पिकेटी का यह अध्ययन हमारे समय में आय की असमानता की समझ क़ायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिर भी, चूँकि पूँजी सामाजिक संबंधों का संजाल है, इसलिए **वितरणमूलक अन्याय ('क्यों') का अन्वेषण करना उतना ही, कहा जाए तो ज़्यादा ही, महत्त्वपूर्ण है जितना आय की असमानता की डाटा-आधारित गतिकी ('क्या') का** अन्वेषण करना।

ब्याज-पूँजी

अगर एक माल के रूप में ख़ुद पूँजी का सौदा होने लगे तो क्या होगा?

> पूँजी का उपयोग-मूल्य उस मुनाफ़े में ही सन्निहित है, जो वह पूँजी में परिवर्तित किये जाने पर उत्पादित करता है। सम्भाव्य पूँजी की इस हैसियत में, मुनाफ़ा उत्पादित करने के साधन के रूप में, वह माल बन जाता है, लेकिन अपने ही ढंग का माल। अथवा, जो वही बात हुई, पूँजी के रूप में माल बन जाती है।[20]
>
> राष्ट्र के समृद्धि-पथ पर प्रगति करते जाने के साथ-साथ लोगों का एक ऐसा वर्ग पैदा हो जाता है और अधिकाधिक बढ़ता जाता है, जो अपने पूर्वजों के श्रम की बदौलत अपने पास इतना धन पाते हैं कि जिससे महज़ ब्याज से ही ख़ूब मज़े में गुज़र-बसर की जा सकती है। बहुत से ऐसे लोग भी, जो अपनी जवानी और प्रौढ़ावस्था में व्यवसाय में सक्रिय रूप से लगे रहे थे, बुढ़ापे में स्वयं अपने द्वारा संचित रक़मों के ब्याज पर आराम से गुज़र करने के लिए अवकाश ले लेते हैं। इन दोनों वर्गों की प्रवृत्ति देश की समृद्धि के साथ बढ़ते जाने की होती है, कारण कि जो लोग यथेष्ट पूँजी के साथ शुरुआत करते हैं, उनके उन लोगों की अपेक्षा जल्दी स्वावलम्बन प्राप्त कर लेने की सम्भावना होती है, जो कम पूँजी से शुरू करते हैं। इसलिए होता यह है कि पुराने तथा सम्पन्न देशों में समाज की कुल उत्पादक पूँजी में राष्ट्रीय पूँजी के उस हिस्से का, जो उन लोगों के क़ब्ज़े में होता है कि जो उसका नियोजन करने की जहमत को ख़ुद उठाने के अनिच्छुक होते हैं, अनुपात हाल ही में आबाद और ग़रीब ज़िलों की अपेक्षा अधिक होता है। इंग्लैण्ड में ... आबादी के अनुपात में किरायाजीवियों अथवा वार्षिकीभोगियों (रेंटियर्स) का वर्ग कितना बड़ा है! किरायाजीवियों के वर्ग के साथ-साथ पूँजी उधार देने वालों का वर्ग भी बढ़ता जाता है, क्योंकि असल में ये दोनों एक ही हैं। ...
>
> इसके साथ ही, उधार पद्धति के विकास और समाज के सभी वर्गों की नक़द बचतों पर उद्योगपतियों तथा व्यापारियों का नियंत्रण बढ़ता जाता है। यह क्रिया बैंकों के ज़रिये संपन्न होती है और इन बचतों का उत्तरोत्तर ऐसी राशियों में संकेंद्रण होता है, जो मुद्रा-पूँजी का काम देता है। ब्याज दर पर इसका प्रभाव पड़ना लाज़िमी है। ...

[20] कार्ल मार्क्स (1983), *पूँजी,* खण्ड 3, (हिंदी संस्करण), प्रगति प्रकाशन, मास्को, अध्याय-22, 'लाभ का विभाजन, ब्याज दर, नैसर्गिक ब्याज दर' : 312. (नरेश बेदी के अनुवाद में थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया है).

उधार पूँजी के बूते पर काम करने वाले उत्पादक पूँजीपति के लिए सकल मुनाफ़ा दो हिस्सों में बँट जाता है— ब्याज, जो उसे ऋणदाता को देना है, और ब्याज के अलावा अतिरिक्त (मूल्य), जो मुनाफ़े के उसके हिस्से का निर्माण करता है। अगर सामान्य मुनाफ़ा दर नियत है, तो यह अंश ब्याज दर द्वारा निर्धारित होता है और अगर ब्याज दर नियत हो, तो सामान्य मुनाफ़ा दर द्वारा।[21]

सकल मुनाफ़ा दो भिन्न व्यक्तियों में ... एक गुणात्मक विभाजन में परिणत हो जाता है। मुनाफ़े का एक अंश अब एक रूप में पूँजी से उत्पन्न फल की तरह, ब्याज की तरह आता है, दूसरा अंश एक विपरीत रूप में पूँजी के फल जैसा और इस प्रकार उद्यम के मुनाफ़े जैसा लगता है। सकल मुनाफ़े के दोनों भागों का एक दूसरे के संदर्भ में यह दृढ़ पृथक्करण, मानो वे तत्वतः दो भिन्न स्रोतों से उत्पन्न हुए हों, अब समस्त पूँजीपति वर्ग और कुल पूँजी के लिए पक्का रूप ले लेता है।

सक्रिय पूँजीपति द्वारा नियोजित पूँजी उधार की है या नहीं, या मुद्रा पूँजीपति की पूँजी स्वयं उसके द्वारा नियोजित की जाती है या नहीं— यह अब मायने नहीं रखता। हर पूँजी का मुनाफ़ा, और फलतः पूँजियों के समकरण द्वारा स्थापित औसत मुनाफ़ा, गुणात्मक रूप से दो भिन्न, परस्पर स्वतंत्र और अलग-अलग पृथक्कृत भागों, अर्थात् ब्याज और उद्यम के मुनाफ़े में विखण्डित और पृथक् हो जाता है। ... उधार पूँजी पर काम करने वाले पूँजीपति की ही भाँति स्वयं अपनी पूँजी पर काम करने वाला पूँजीपति सकल मुनाफ़े के स्वामी के नाते सकल मुनाफ़े को, स्वयं अपना ऋणदाता होने के नाते, स्वयं अपने को देय ब्याज में, और अपना कार्य निष्पादित करते सक्रिय पूँजीपति के नाते अपने को देय उद्यम के मुनाफ़े में विभाजित करता है। ... पूँजी का नियोक्ता, स्वयं अपनी पूँजी से काम करते समय, दो व्यक्तियों में विभाजित हो जाता है— पूँजी का स्वामी और पूँजी का नियोजनकर्ता। उसकी पूँजी भी (अपने द्वारा उत्पन्न लाभ संवर्गों के संदर्भ में पूँजी-सम्पत्ति) उत्पादन-प्रक्रिया के बाहर पूँजी, जो अपने आप ब्याज देती है, और उत्पादन-प्रक्रिया में पूँजी, जो अपने कार्य के ज़रिये उद्यम का मुनाफ़ा देती है, में विखण्डित हो जाती है।'[22]

प्रबंधकीय और उद्यमी श्रम

चूँकि पूँजीवादी उत्पादन के अंतर्गत पूँजी का विशिष्ट सामाजिक लक्षण— दूसरे की श्रम-शक्ति को वशीभूत करने का गुण— स्थापित हो जाता है, इसलिए ब्याज इस अंतःसंबंध में पूँजी द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य का एक भाग प्रतीत होता है, इसलिए अतिरिक्त मूल्य का दूसरा भाग— उद्यम का मुनाफ़ा— अनिवार्यतः ऐसा लगता है कि जैसे वह पूँजी के नाते पूँजी से नहीं, वरन् ... उत्पादन-प्रक्रिया से आता हो। किंतु पूँजी से पृथक्कृत उत्पादन-प्रक्रिया मात्र श्रम-प्रक्रिया ही होती है। इसीलिए पूँजी के स्वामी के विपरीत औद्योगिक पूँजीपति पूँजी को प्रवर्तित करने वाले के रूप में नहीं, बल्कि इसके विपरीत, पूँजी से निरपेक्ष एक कार्यकर्ता के रूप में, अथवा सामान्यतः श्रम-प्रक्रिया के एक साधारण अभिकर्ता के रूप में, और वस्तुतः उजरती मज़दूर के रूप में सामने आता है। ...

ब्याज का यह रूप मुनाफ़े के दूसरे अंश को उद्यम के लाभ का, और इसके अलावा अधीक्षण की मज़दूरी का गुणात्मक रूप प्रदान कर देता है। पूँजीपति को अपने में जो विशिष्ट कार्य निष्पन्न करने होते हैं और जो श्रमिक से भिन्न और उसके विपरीत उसके हिस्से में आते हैं, उन्हें मात्र श्रम के कार्यों की तरह प्रस्तुत किया जाता है। वह अतिरिक्त मूल्य इसलिए नहीं सृजित करता कि वह पूँजीपति की तरह काम करता है, बल्कि इसलिए कि पूँजीपति की अपनी हैसियत से निरपेक्ष, वह काम भी करता है। इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य का यह अंश अब अतिरिक्त मूल्य नहीं रह जाता, बल्कि उसका विलोम, किये गये श्रम के समतुल्य बन जाता है। ... शोषण की वास्तविक प्रक्रिया ... ब्याजी पूँजी पर डाल दिये जाने से स्वयं यह शोषण प्रक्रिया (औद्योगिक पूँजी द्वारा श्रम-शक्ति के शोषण की प्रक्रिया) साधारण श्रम-प्रक्रिया जैसी लगने लगती है, जिसमें कार्यरत पूँजीपति बस श्रमिक से भिन्न प्रकार का श्रम ही करता है। ... उद्यम के मुनाफ़े के ब्याज से वैषम्य से उद्भूत यह

---

[21] वही, अध्याय-23, 'ब्याज और उद्यम का लाभ' : 325.

[22] वही : 327.

धारणा कि उद्यम का मुनाफ़ा श्रम का अधीक्षण करने की मज़दूरी है, इस तथ्य से और भी पुष्ट होती है कि मुनाफ़े का एक अंश वस्तुत: मज़दूरी के रूप अलग किया जा सकता है और वास्तव में किया जाता है,' या इसकी उल्टी ही बात कि मज़दूरी का एक अंश पूँजीवादी उत्पादन के अंतर्गत मुनाफ़े के अभिन्न अंग के रूप में प्रकट होता है।

यह अंश, जैसा कि ऐडम स्मिथ ने सही ही निष्कर्ष निकाला था, अपने को शुद्ध रूप में, एक ओर, लाभ (ब्याज और उद्यम के मुनाफ़े के योग के रूप में) से, और दूसरी ओर लाभ के उस अंश से स्वतंत्र और पूर्णत: अलग किये हुए रूप में प्रकट करता है, जो ब्याज के घटाए जाने के बाद उद्यम के मुनाफ़े के रूप में व्यवसाय की उन शाखाओं के प्रबंधकों के वेतन में बच रहता है, जिनका आकार, आदि प्रबंधन के विशेष वेतन का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त श्रम विभाजन का अवसर प्रदान करता है। ...

पूँजीवादी उत्पादन के आधार पर स्टॉक कम्पनियों में प्रबंध मज़दूरी के सिलसिले में एक नयी ठगी पैदा हो जाती है, इसलिए कि वास्तविक निवेशक के ऊपर नानासंख्या प्रबंधकों अथवा निदेशकों के मण्डल को रख दिया जाता है, जिनके लिए अधीक्षण और प्रबंध सिर्फ़ अंशधारियों को लूटने और दौलत बटोरने के बहाने का ही काम देते हैं।'[23]

पिकेटी उद्यमी और शीर्ष प्रबंधन कार्य को श्रम की श्रेणी में शामिल करते हैं।

देवरूप में पूँजी

पूँजी के संबंध अपना सर्वाधिक बाह्यीकृत तथा देव जैसा रूप ब्याजी पूँजी में ग्रहण करते हैं। हमारे आगे यहाँ मु > मु1, और अधिक मुद्रा का सृजन करती हुई मुद्रा है, इन दोनों चरमों को पूरा करने वाली प्रक्रिया के बिना स्वप्रसारमान मूल्य है। ... मु > मु1, जिसमें मु1 = मु +> मु, यानी और अधिक मुद्रा का सृजन करती हुई मुद्रा है, यह पूँजी का एक निरर्थक संक्षेपण में परिणत प्राथमिक और सामान्य सूत्र है। ... पूँजी ब्याज के एक रहस्यमय और स्वयम्भू स्रोत, स्वयं अपनी वृद्धि के स्रोत की तरह सामने आती है। ... ब्याजी पूँजी में यह स्वनिविष्ट देव— स्वप्रसारमान मूल्य, मुद्रा को उत्पन्न करती मुद्रा— अपने शुद्ध रूप में सामने आता है और इस रूप में उस पर अब अपने उद्‌गम के जन्मचिह्न नहीं रहते। ... इस तरह से हम पूँजी के देवरूप और दैवी पूँजी की अवधारणा को प्राप्त करते हैं। ... यह पूँजी का अपने स्पष्टतम रूप में रहस्यमयीकरण है।

भौंडे राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिए, जो पूँजी को मूल्य के, मूल्य सृजन के एक स्वतंत्र स्रोत की तरह पेश करने की कोशिश करता है, यह रूप स्वभावतया एक वास्तविक खोज है, यह एक ऐसा रूप है, जिसमें लाभ का स्रोत अब पहचानने योग्य नहीं रह जाता है और जिसमें पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का परिणाम— प्रक्रिया से वियुक्त— एक स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर लेता है। ...

जिस प्रकार वर्धन प्रक्रिया पेड़ों का गुण है, उसी प्रकार मुद्रा जनन मुद्रा-पूँजी के रूप में पूँजी की अंतर्जात विशेषता प्रतीत होती है। ... मुद्रा अब गर्भवती है। ... उस पर दिन-रात ब्याज पैदा होने लगता है, फिर चाहे वह जाग्रत हो या निद्रास्थ, घर में हो या विदेश में। ... अपनी ब्याजी पूँजी की हैसियत से पूँजी उस सारी सम्पदा के स्वामित्व का दावा पेश करती है, जो कभी भी पैदा की जा सकती है, और उसने अब तक जो कुछ भी पा लिया है, वह उसकी सर्वग्रासी क्षुधा के लिए एक किस्त मात्र है। पूँजी के अंतर्जात नियमों से वह सारा श्रम, जो मानवजाति कभी भी कर सकती है, उसी का होता है। संक्षेप में, वह मोलाक है।[24] ...

सामाजिक पूँजी के स्वभाव में ही अंतर्निहित असमानता का उद्‌घाटन करने के क्रम में पिकेटी ख़ुद दैवी पूँजी की अवधारणा में फँस जाते हैं (पूँजी ⟶ अधिक मात्रा में पूँजी पर प्रतिप्राप्ति)। यह

---

[23] वही : 331-3,334-5.

[24] वही, अध्याय-24, 'ब्याजी पूँजी के रूप में पूँजी के संबंधों का बाह्यीकरण' : 341-3, 346. मोलाक : कार्थेज और फ़िनीशिया में सूर्य, अग्नि और युद्ध के (सामी) देवता जिनकी पूजा में मानवीय बलि दी जाती थी.

किताब की दूसरी बड़ी विसंगति है। बिग डाटा अध्ययन-पद्धति पिकेटी को पूँजी-पूजा (अथवा दैवी पूँजी) तक ही ले जा सकती है— इसलिए वे अधिक से अधिक पूँजी को नियंत्रित करने तक ही सोच सकते हैं। वे उत्पादन को संगठित करने की वैकल्पिक अथवा अन्य प्रणाली की कल्पना करने से भी बचते हैं अथवा ऐसे विकल्पों को कोष्ठकों में छिपाते हैं।[25]

पूँजीवाद का बुनियादी अंतर्विरोध

(पूँजी पर प्रतिप्राप्ति की दर, r) > (वृद्धि-दर, g) के रूप में पूँजीवाद के बुनियादी अंतर्विरोध का पिकेटी का सूत्रीकरण उनकी पूँजी-पूजा का स्वाभाविक परिणाम है। (दो शताब्दियों तक विस्तृत आँकड़ों द्वारा समर्थित) यह तथ्यात्मक कथन शायद ही पूँजीवादी उत्पादन की आंतरिक दुनिया की तलाश करने में कोई मदद कर पाता है और प्रस्तावों तथा व्याख्याओं के द्वारा कुछ भी नया सामने नहीं लाता है। मार्क्स के लिए—

> पूँजीवादी उत्पादन की वास्तविक बाधा स्वयं पूँजी है। इसका मतलब यह है कि पूँजी और उसका स्वप्रसार प्रारम्भ बिंदु और अंतिम बिंदु, उत्पादन का उद्देश्य और प्रयोजन बन जाते हैं। उत्पादन केवल पूँजी के लिए उत्पादन होता है, न कि इसके विपरीत, और उत्पादन साधन केवल उत्पादकों के समाज की जीवन-प्रक्रिया के सतत विकास के ही साधन नहीं होते। उत्पादकों के भारी बहुलांश के स्वत्वहरण और दरिद्रीकरण के आधार पर जिन सीमाओं के भीतर पूँजी के मूल्य का परिरक्षण तथा स्वप्रसार हो सकता है, वे सीमाएँ उन उत्पादन विधियों के निरंतर टकराव में आती हैं, जिन्हें पूँजी अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रयोग करती है और जो उत्पादन के असीमित प्रसार की तरफ़ स्वयं एक साध्य के नाते उत्पादन की तरफ़ श्रम की सामाजिक उत्पादिता के निर्बंध विकास की तरफ़ धकेलती है। साधन (समाज की उत्पादक शक्तियों का निर्बंध विकास) सीमित साध्य (विद्यमान पूँजी के स्वप्रसार) के साथ निरंतर टकराता है। .... मुनाफ़े की दर पूँजावादी उत्पादन की प्रेरक शक्ति है। चीज़ें सिर्फ़ तभी तक उत्पादित की जाती है जब तक उन्हें मुनाफ़े के साथ उत्पादित किया जा सकता है ... फिर चाहे मानवों और पूँजी-मूल्यों के रूप में कितनी भी क़ीमत क्यों न चुकानी पड़े ...।[26]
>
> ये अंतर्विरोध विस्फोटों, तबाहियों, संकटों की ओर ले जाते हैं। श्रम कुछ समय के लिए निलम्बित हो जाता है। पूँजी की बड़े पैमाने पर बर्बादी होती है। वह उस निम्न बिंदु तक जबरन पहुँचा दी जाती है जहाँ वह बिना आत्महत्या किये, अपनी उत्पादक शक्तियों को फिर से पूरी तरह नियोजित कर सके। बहरहाल, और भी बड़े रूप में इस महाविपत्ति की पुनरावृत्ति होती रहती है, और अंत में बलपूर्वक उसका तख़्ता पलट दिया जाता है।'[27] ...

पिकेटी यहाँ 1914-1950 की कालावधि का स्मरण कर सकते हैं।

पूँजी : शाश्वत और नश्वर

पिकेटी की पूँजी की परिभाषा में उत्तर पुरापाषाणकालीन और मध्यपाषाणकालीन गुफ़ाओं, तम्बुओं, झोपड़ियों से लेकर मध्ययुगीन भूमि और हमारे समय के स्मार्टफ़ोन तक सभी कुछ शामिल हैं। वे लिखते हैं :

> पूँजी संचय के शुरुआती वर्षों में उपकरण और भूमि का सुधार/परिष्कार (जैसे बाड़ाबंदी, सिंचाई, जलनिकासी, आदि) तथा प्राथमिक वासस्थान (गुफ़ा, तम्बू, झोपड़ी, आदि) शामिल हैं। बाद में,

---

[25] पिकेटी, अध्याय-1, 'इनकम ऐंड आउटपुट' / 'द कैपिटल-लेबर स्प्लिट इन द लॉन्ग रन : नॉट सो स्टेबिल'.

[26] कार्ल मार्क्स, वही, अध्याय-15, 'नियम की आंतरिक असंगतियों का प्रतिपादन' : 221-2, 229.

[27] कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स (1987), *कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 29, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, 'आउटलाइंस ऑफ़ द क्रिटीक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी' (रफ़ ड्राफ्ट ऑफ़ 1857-58), III चैप्टर ऑन कैपिटल' : 134.

उत्तरोत्तर औद्योगिक तथा व्यापारिक पूँजी के परिष्कृत रूप आये। उसी तरह आवासन की भी निरंतर उन्नति होती गयी।[28]

इस प्रकार जहाँ तक मानव समाज का सवाल है, पूँजी को एक ऐसी शाश्वत श्रेणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो तमाम सभ्यताओं/समाजों में अंतर्भूत रही है। इस दिव्य श्रेणी को उसकी दिव्यता से वंचित कर देना, उसे ऐतिहासिकता के धरातल पर ले आना, एक शाश्वत श्रेणी को नश्वर श्रेणी में बदल देना— 'शुद्ध' (मार्क्स की शब्दावली में भौंडे) अर्थशास्त्रियों की नज़र में ईशनिंदा के समान है। इस ईशनिंदा के लिए उन्होंने मार्क्स को कभी माफ़ नहीं किया। (वैसे, अराजकतावादी भी धन/पूँजी को सभी सभ्यताओं में अंतर्निहित श्रेणी के रूप में देखते हैं— उनमें फ़र्क़ केवल यह है कि जहाँ भौंडे अर्थशास्त्री उसे मानव समाज को एक चरण से दूसरे चरण में ले जाने वाली सकारात्मक शक्ति कि रूप में देखते हैं, वहीं अराजकतावादी उसे मानवजाति को पतन के गर्त में ले जाने वाली 'शैतानी' शक्ति के रूप में।)

बहरहाल, मार्क्स के लिए पूँजी 'कोई निरपेक्ष' श्रेणी नहीं है, बल्कि पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली उत्पादन की भौतिक आवश्यकताओं के विकास में एक सीमित युग के अनुरूप ऐतिहासिक प्रणाली है, जिसकी अपनी सीमा है और जो सापेक्षिक है।

इस प्रकार, यदि आप पूँजी को उसकी 'दिव्यता' या 'शाश्वतता' से वंचित कर देते हैं, तो इन 'शुद्ध' अर्थशास्त्रियों के लिए, मानव समाज की पूरी इमारत ही भहराकर गिर जाएगी। इसलिए मार्क्स की प्रस्थापनाएँ इन्हें 'एपोकैलिप्टिक' (अवश्यम्भावी विनाशकारी) लगती हैं।

सीमांत उपयोगिता का सिद्धांत

पूँजी के बारे में उपर्युक्त धारणा— उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य को, धन और पूँजी को गड्डमड्ड कर देने वाली अवधारणा— कोई नयी बात नहीं है। शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के आरम्भिक दिनों में ही इसकी जड़ें तलाशी जा सकती हैं। फ्रांस के मामले में इसे कोण्डिलैक (1715-1780) की रचनाओं में देखा जा सकता है। कोण्डिलैक की रचना *ल कॉमर्स एट ला गवर्नमेंट* और ऐडम स्मिथ (1723-1790) की *एन इनक्वैरी इनटू द नेचर ऐंड कॉज़ेज़ ऑफ़ द वेल्थ ऑफ़ नेशंस* एक ही साल (1776 में) प्रकाशित हुई थी। कुछ अर्थशास्त्री अब भी यह विश्वास करते हैं कि उन्नीसवीं सदी के प्रथम अर्धांश में इंग्लैण्ड का जो विपुल प्रभाव था, उसके कारण कोण्डिलैक की रचना और उसकी ख्याति ऐडम स्मिथ और उनके 'वेल्थ ऑफ़ नेशंस' के सामने दब कर रह गयी।

कोण्डिलैक के मूल्य-सिद्धांत के अनुसार, किसी भी चीज़ का मूल्य एकमात्र उसकी उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। ... (उपयोग-मूल्य को विनिमय का आधार बताने वाला) कोण्डिलैक का उपयोगितावादी सिद्धांत अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित मूल्य के श्रम-सिद्धांत के विरोध में था। इस श्रम सिद्धांत की भी अपनी सीमाएँ थीं, अपनी उलझनें थीं और अपने अंतर्विरोध थे, तथापि उन दिनों के अनेक प्रमुख अर्थशास्त्री इसी श्रम सिद्धांत का पक्षपोषण करते थे। ब्यॉयगिलेबर (1646-1714), ऐडम स्मिथ (1723-1790), बेंजामिन फ्रैंकलिन (1706-1790), सिस्मौंदी (1773-1842) आदि— ये सभी मूल्य के श्रम सिद्धांत के हिमायती थे; सार रूप में, जैसाकि ऐडम स्मिथ ने *वेल्थ ऑफ़ नेशंस* (बुक वन, चैप्टर-V) में लिखा था, 'श्रम ... तमाम मालों के विनिमय मूल्य का वास्तविक मापदण्ड है।'

मार्क्स कोण्डिलैक के उपयोगितावादी सिद्धांत के विरोधी तो थे ही, उन्होंने अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत का निरूपण मूल्य के प्रचलित श्रम सिद्धांत में निहित विसंगतियों की समालोचना के ज़रिये ही किया था।

---

[28] पिकेटी, अध्याय-6, 'व्हाट इज़ कैपिटल यूज़्ड फ़ॉर'.

उन्नीसवीं सदी के अंतिम तीन दशकों में, कोण्डिलैक के इस सिद्धांत को सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत के रूप में नया जीवन मिला और अर्थशास्त्रियों की एक नयी पीढ़ी की रचनाओं ने इसे न सिर्फ़ पर्याप्त विस्तार दिया, बल्कि इसे प्रतिष्ठा भी दिलायी। इन अर्थशास्त्रियों में कुछ प्रमुख नाम थे— विलियम जेवंस (ब्रिटेन), लियोन वालरा (स्विट्ज़रलैण्ड), कार्ल मेंगर, फ्रेड्रिक वॉन वाइज़र, यूजेन बोहम-बेवर्क (ऑस्ट्रिया), आदि। ऑस्ट्रियन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स के नाम से विख्यात इस धारा के अनुसार किसी भी वस्तु का मूल्य उसकी 'उसकी सीमांत उपयोगिता' से— किसी की सबसे कम महत्त्वपूर्ण ज़रूरत को संतुष्ट करने वाली अंतिम इकाई की उपयोगिता से— निर्धारित होती है। ... उनका विश्लेषण उपयोग-मूल्य अथवा उसकी व्यक्तिपरक-मनोवैज्ञानिक व्याख्या पर केंद्रित था। बाद में यह स्कूल भी दो शिविरों में बँट गया— एक शिविर के सबसे प्रमुख प्रतिनिधि थे ब्रिटेन में अल्फ्रेड मार्शल और यह शिविर 'कार्डिनलिस्ट्स' के नाम से जाना जाता है। दूसरा खेमा 'ऑर्डिनलिस्ट्स' कहलाता है जिसके प्रतिनिधि थे ब्रिटेन में जॉन हिक्स और अमेरिका में पॉल सेमुअलसन।

इस सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत के साथ-ही-साथ (उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही) सीमांत उत्पादकता के सिद्धांत का भी आगमन हुआ जिसके प्रवर्तक थे अमेरिका के जॉन बेट्स क्लार्क (1847-1938)। इस सिद्धांत के अनुसार, मूल्य का स्रोत उत्पादन कारकों (श्रम, पूँजी और भूमि) की उत्पादकता है।

पिकेटी का सैद्धांतिक मॉडल

चेतावनी भरी टिप्पणियों तथा तथ्यात्मक कथनों के बावजूद, यदि कोई पिकेटी के विश्लेषणों और व्याख्याओं को देखे, तो उनकी सैद्धांतिक वंशावली का अच्छी तरह पता लगाया जा सकता है। उनके आँकड़े दूसरी दिशा (मार्क्स की ओर) का संकेत करते हैं :

> वे इस बात से अवगत हैं कि आपूर्ति-पक्षीय और माँग-पक्षीय नुस्खे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में किंचित स्थायी और संतुलित विकास को अंजाम देने में निरर्थक साबित हुए हैं। उन उपायों ने ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्पकालिक प्रभाव ही पैदा किया है। वे स्वीकार करते हैं कि पूँजी/आय दर में बढ़ोतरी में सतत वृद्धि और साथ ही राष्ट्रीय आय में पूँजी के हिस्से में अनवरत वृद्धि पर लगाम लगाने की पूँजीवाद के अंतर्गत कोई अपनी प्रणाली मौजूद नहीं है। फिर भी वे सीमांत उपयोगिता तथा उत्पादकता के सिद्धांत से चिपके रहते हैं, जो पूँजी में अंतर्निहित सामाजिक संबंधों तथा अंतर्विरोधों पर पर्दा डालते हैं। संग्रहीत आँकड़ों की शरण लेना भी इस काम में उनकी मदद करता है।

2008-09 की मंदी और पिछले तीन दशकों से आर्थिक परिदृश्य को संचालित करने वाली नव-उदारतावादी मुक्त बाज़ार की नीतियों के ख़िलाफ़ व्यापक नाराज़गी और प्रतिरोध की पृष्ठभूमि में पिकेटी नव-कींसवाद की एक विशिष्ट शाखा को (पॉल सैमुअलसन, तथा रॉय हैरोड-इवसेय डोमर-रॉबर्ट सोलो, आदि के नव-कींसवादी सिद्धांत को) कुछ हद तक परिष्कृत रूप में पुनर्जीवित करते हैं। प्रसंगवश, स्मरण रहे कि 1929 की विश्वव्यापी महामंदी के बाद 1930 के दशक से 1970 के दशक तक आर्थिक परिदृश्य पर कींसवाद तथा माँग-पक्षीय आर्थिक नुस्ख़ों की विभिन्न शाखाओं का बोलबाला रहा। 1974-75 के विश्व आर्थिक संकट (मुद्रास्फीति) ने जॉन मेनॉर्ड कींस तथा कींसवाद/नव-कींसवाद की आभा को बिखेर कर रख दिया। अब आर्थिक परिदृश्य पर अपना सिक्का जमाने की बारी अपने वक़्त का इंतज़ार कर रहे आपूर्ति-पक्षीय मौद्रिकतावादी शिकागो स्कूल और इसके सबसे मुखर प्रवक्ता मिल्टन फ्रीडमैन की थी। ब्रिटेन में थैचरवादी सुधारों (1979) और अमेरिका में रीगनोनॉमिक्स (1980) के आगमन के बाद क़रीब तीन दशकों से इस स्कूल का दबदबा बना हुआ है। बहरहाल, 2008-09 की मंदी तथा अमेरिका में उभरे 'ऑकुपॉय' आंदोलन तथा यूरोप के 'एंटी-ऑस्टेरिटी'(अर्जित अधिकारों तथा लोक-कल्याणकारी सुधारों में कटौती के ख़िलाफ़) आंदोलनों से इस स्कूल के नव-उदारतावादी अभियान को ज़ोर का झटका लगा है।

पिकेटी मुक्त बाज़ार के रूढ़िवाद का विरोध तो करते हैं, लेकिन वे नव-उदारतावादी बाज़ार-सुधारों का विरोध नहीं करते। वे मुक्त-बाज़ार की नीतियों का नव-कींसवादी राजकीय हस्तक्षेप से मेल बिठाना चाहते हैं। ऐसा वे इसलिए नहीं करते कि कोई सामंजस्य पैदा हो (वे जानते हैं कि ऐसा कोई प्रयास अव्यावहारिक होगा)। वे तो पूँजीवादी संचय की मनमानी प्रक्रिया पर अंकुश लगाने और समाभिरूपता ('कनवर्जेंस') की ताक़तों को मज़बूती प्रदान करने के लिए ऐसा करना चाहते हैं। वे वृद्धि-दर बढ़ाने के मामले में काफ़ी निराश हैं, और इसलिए, पूँजी पर वैश्विक प्रगतिशील कर के अपने 'यूटोपियन' प्रस्ताव के अलावा 'ज्ञान के प्रसार' पर ज़ोर देते हैं। वे लिखते हैं :

> सारांशतः, ऐतिहासिक अनुभव सुझाता है कि अंतर्राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर, समाभिरूपता की प्रमुख प्रणाली ज्ञान का प्रसार है। दूसरे शब्दों में, ग़रीब धनिकों की सम्पत्ति बनकर नहीं, बल्कि तकनीकी ज्ञान, कौशल और शिक्षा में समान स्तर हासिल कर ही धनिकों की बराबरी कर पाते हैं। ज्ञान का प्रसार कोई आसमान से टपकी चीज़ नहीं है। यह प्रायः अंतर्राष्ट्रीय खुलेपन और व्यापार से तेज़ गति प्राप्त करता है (आत्मनिर्भरता के नाम पर बाहरी दुनिया के लिए दरवाज़ा बंद कर लेने वाली व्यवस्था प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को प्रोत्साहित नहीं करती।) सबसे बड़ी बात तो यह है कि ज्ञान का प्रसार विभिन्न आर्थिक कर्ताओं को भरोसेमंद स्थायी क़ानूनी ढाँचे की गारंटी देते हुए जनसमुदाय की शिक्षा और उनके प्रशिक्षण में बड़े निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए वित्त जुटाने, और संस्थाओं को गोलबंद करने की राज्य की क्षमता पर निर्भर करता है। इसीलिए यह वैध और कार्यकुशल सरकार की उपलब्धियों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है। संक्षेप में कहा जाए तो वैश्विक समृद्धि और अंतर्राष्ट्रीय असमानताओं के बारे में इतिहास की यही मुख्य शिक्षाएँ हैं।

इस मामले में क्या कहा जाए। पिकेटी सुविधाजनक ढंग से वितरणमूलक न्याय के पूरे प्रश्न को पर्दे के पीछे कर देते हैं। ऐतिहासिक अनुभव और उनके द्वारा उपलब्ध कराया गया आँकड़ा इसके उलट कहानी कहते हैं। पिछली दो शताब्दियों में ज्ञान के प्रसार ने न तो यूरोप और अमेरिका में और न ही अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर असमानताओं में कमी की है। उल्टे उनकी किताब का एक मक़सद तो आज, इक्कीसवीं सदी में, असमानताओं के ख़तरनाक हद तक बढ़ जाने के प्रति दुनिया को आगाह करना है। (यह कहने की ज़रूरत नहीं कि जीवन की बुनियादी ज़रूरतें, जीवन-स्तर, आदि तुलनात्मक श्रेणियाँ हैं। मेहनतकश जनता के जीवन-स्तर में सुधार का अनिवार्य अर्थ असमानता में गिरावट नहीं है। यदि मज़दूरी में बढ़ोतरी के साथ पूँजी की आय में तेज़ वृद्धि हो, तो इसका अर्थ असमानता में वृद्धि ही होगी।)

सीमांत उपयोगिता और उत्पादकता का उनका आत्मपरक-मनोवैज्ञानिक सैद्धांतिक आधार उनको इसी सीमा तक ले जा सकता है और उन्हें अपने आँकड़ों के बिल्कुल विरोध में खड़ा कर देता है। उनके वास्तविक आँकड़े उनकी मनोगत सैद्धांतिक निष्ठा से सीधे टकराते हैं।

पिकेटी की सैद्धांतिक वंशावली को सार रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है : पिकेटी > रॉबर्ट सोलो > डोमर-हैरोड > पॉल सैमुअलसन > जे.बी. क्लार्क > ऑस्ट्रियन स्कूल > कोण्डिलैक। 'शुद्ध' अर्थशास्त्र की मनोगत सैद्धांतिक धारा का अनुसरण करते हुए, वे समय-समय पर पूँजी-विरोधी रैडिकल शब्दाडम्बर के छद्मावरण में वास्तविकता को छिपाते हैं। इस तरह उनकी बिग डाटा अध्ययन-प्रणाली के पीछे के सिद्धांत का भेद खुल जाता है और यह सिद्धांत आँकड़ों द्वारा उद्‌घाटित तथ्यों को अपने में पूरी तरह समाहित करने में निहायत ही अक्षम साबित होता है। डाटा पिकेटी के सैद्धांतिक प्रतिमान को धराशायी कर देता है। यह किताब की तीसरी सबसे बड़ी विसंगति है। (यह पूर्णतः अलग बात है कि यदि हम वैकल्पिक तर्क और सैद्धांतिक मॉडल अपनाएँ तो हमें और नये आँकड़ों की ज़रूरत पड़ेगी और पिकेटी के आँकड़े नाकाफ़ी साबित होंगे।)

सम्पत्ति : विरासती और सृजित

पिकेटी की किताब का तीसरा भाग विरासत में प्राप्त सम्पत्ति के मुक़ाबले लम्बे दौर में श्रम से होने वाली आय के सापेक्ष महत्त्व पर चर्चा को समर्पित है। इस विषय पर मूल्यवान आँकड़ों और सूचनाओं के साथ वे हमें बाल्जाक (*पेर गोरियो*), जेन ऑस्टेन (*सेंस ऐंड सेंसिबिलिटी*), हेनरी जेम्स (*वाशिंगटन स्क्वायर*), और ओरसन वेलेस (*दि मेगनिफ़िसेंट एम्बरसंस*) की दुनिया की सैर पर ले चलते हैं।

शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के आरम्भिक दिनों से ही विरासत का प्रश्न ख़ासा विवाद का प्रश्न रहा है। 1820 के दशक में ही सेंसिमो के अनुयायियों (औफ़ौंते, बाज़ार्ड, रॉदरीग, बुचेज़, आदि) ने विरासत के अधिकार के उन्मूलन की माँग उठाई थी। 1830 में बाज़ार्ड के व्याख्यानों पर आधारित एक पुस्तिका पेरिस से प्रकाशित की गयी थी जिसमें विरासत के अधिकार के बारे में सेंसिमो के अनुयायियों के विचारों का ख़ुलासा किया गया था।[29]

आगे चलकर, पहले इण्टरनेशनल के बासले कांग्रेस (6–11 सितम्बर, 1869) में बकूनिनवादियों की सरपरस्ती वाले जेनेवा सेक्शन की सलाह पर विरासत के अधिकार के सवाल को कार्यसूची में शामिल किया गया। निजी सम्पत्ति और सामाजिक अन्याय के ख़ात्मे के एकमात्र साधन के रूप में उन्होंने विरासत के अधिकार के उन्मूलन का प्रस्ताव रखा था।[30]

बहरहाल, 1914–1950 की अवधि के दौरान, ख़ासकर यूरोप में, विरासत में प्राप्त सम्पत्ति का अच्छा-ख़ासा हिस्सा युद्धों, क्रांतियों, मुद्रास्फीति और महामंदी की भेंट चढ़ गया।

> द्वितीय विश्व-युद्ध के तुरंत बाद के दशकों में विरासत में प्राप्त सम्पत्ति ने बहुत हद तक अपना महत्त्व खो दिया था, और शायद इतिहास में पहली बार काम और अध्ययन शीर्ष पर पहुँचने का सबसे विश्वसनीय मार्ग बन गया। ... आज भी बहुसंख्यक मामलों में अध्ययन, काम और पेशागत सफलता पर निर्भर करना न सिर्फ़ अधिक नैतिक, बल्कि अधिक लाभप्रद भी है।[31]

आगे पिकेटी चेतावनी देते हुए लिखते हैं :

> उदाहरण के तौर पर, यदि शीर्ष दस फ़ीसदी आबादी सालाना उत्पाद का नब्बे फ़ीसदी हड़प जाती है (और सम्पत्ति के मामले में एक फ़ीसदी ख़ुद अपने लिए पचास फ़ीसदी सम्पत्ति हथिया लेती है), तो शायद क्रांति को टालना सम्भव नहीं होगा, बशर्ते कि कोई असाधारण रूप से सक्षम दमनात्मक मशीनरी ऐसा न होने दे। पूँजी के स्वामित्व के मामले में ऐसा उच्च संकेंद्रण शक्तिशाली राजनीतिक तनावों का स्रोत तो बन ही चुका है, और इन तनावों का सार्विक मताधिकार के साथ तालमेल बिठाना प्राय: दुष्कर साबित होता है। ... हाल के दशकों में असमानता जिस रफ़्तार से बढ़ती रही है, उसे देखते हुए 2030 तक अमेरिका इस मामले में नया कीर्तिमान (!) क़ायम कर सकता है। तब तक शीर्ष दस प्रतिशत के हाथों में राष्ट्रीय आय का क़रीब साठ प्रतिशत आ चुका होगा और नीचे के पचास फ़ीसदी को राष्ट्रीय आय के महज़ पंद्रह फ़ीसदी से संतुष्ट रहना होगा।[32] ...

सुपर मैनेजर और उनका सुपर वेतन

पिकेटी आगे बताते हैं कि (उपर्युक्त) अति-उच्च असमानता की स्थिति तक पहुँचने के दो रास्ते हैं— एक रास्ता किरायाभोगियों के समाज का है। इसमें विरासत में प्राप्त सम्पत्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। समग्र आय के सोपान में ख़ासकर विरासत में प्राप्त पूँजी से होने वाली आय अपना दबदबा क़ायम कर लेती है।

---

[29] कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स (1988), *कलेक्टेड वर्क्स*, खण्ड 43, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, 'मार्क्स टु पॉल लाफ़ार्ग, 19 अप्रैल, 1870' : 490.

[30] वही : 654, नोट्स 379 और 624.

[31] पिकेटी, अध्याय-7, 'इनईक्वलिटी ऐंड कनसंट्रेशन : प्रीलिमिनरी बियरिंग्स'.

[32] वही.

अति-उच्च असमानता का दूसरा रास्ता अपेक्षाकृत नया है। इसे हम 'सुपरस्टार का समाज' कह सकते हैं (अथवा 'सुपर मैनेजरों का समाज' भी)। इसमें आय के सोपान में विरासत में प्राप्त सम्पत्ति के बजाय श्रम (?) से अथवा 'सुपर मेरिट' (?) से हासिल अति-उच्च आय का प्रभावी स्थान होता है। ... इन दोनों तरह के समाजों के बीच कोई विभाजन रेखा खींचना भोलापन होगा। दोनों समाज और दोनों तरह की असमानताएँ साथ-साथ चलती रह सकती हैं। किरायाभोगियों का समाज और सुपर मैनेजरों का समाज एक साथ अस्तित्वमान हो सकता है। एक व्यक्ति सुपर मैनेजर होने के साथ-साथ किरायाभोगी भी हो ही सकता है। ऐसी कोई चीज़ नहीं जो सुपर मैनेजर के बच्चों को किरायाभोगी होने से रोक सके।[33] ...

पिकेटी यह स्वीकार करते हैं कि सीमांत उत्पादकता के सिद्धांत के आधार पर सुपर मैनेजरों की सुपर सैलेरी की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। 'व्यक्तिगत सीमांत उत्पादकता' की अवधारणा को ही परिभाषित करना काफ़ी मुश्किल है। दरअसल, यह एक विशुद्ध विचारधारात्मक निर्मिति जैसी कुछ चीज़ है जिसके आधार पर उच्च वैभव को न्यायोचित ठहराया जाता है। इस सफ़ाई के ख़िलाफ़ आगाह करते हुए पिकेटी लिखते हैं, 'मेरिट (योग्यता) आधारित यह उग्रवाद सुपर मैनेजरों और किरायाभोगियों के बीच प्रतिद्वंद्विता को जन्म दे सकता है और इसका ख़मियाजा उन लोगों को भुगतना पड़ सकता है जो न तो सुपर मैनेज़र हैं और न ही किरायाभोगी।'[34]

इस प्रकार, सीमांत उत्पादकता का सिद्धांत पिकेटी का साथ नहीं दे पाता (उन्हें यह क़बूल करना पड़ता है)। इस 'विशुद्ध विचारधारात्मक निर्मिति' के भँवरजाल से निकलने का रास्ता हम पहले बता चुके हैं— ब्याज और उद्यम के मुनाफ़े वाले संदर्भ में। यानी, सुपर मैनेजरों के सुपर वेतन की व्याख्या श्रम से होने वाली आय (जैसा कि पिकेटी करते हैं) के बजाय उद्यम के मुनाफ़े में हिस्सेदारी के रूप में की जानी चाहिए। और तब इसे (श्रम आमदनी के बजाय) पूँजी से होने वाली आमदनी के अंश के रूप में देखना होगा। सामाजिक पूँजी के वित्तीयकरण के साथ वास्तविक पूँजी और कार्यशील पूँजी का, ब्याज और उद्यम के मुनाफ़े का द्वैत पैदा होता है। पिकेटी इस द्वैत से पैदा होने वाले भ्रम का शिकार होने से बच नहीं पाते। इस भ्रम के कारण, अपनी शंकाओं तथा आपत्तियों के बावजूद पिकेटी योग्यता और उत्पादकता के संदर्भ में सुपर सैलेरी को न्यायोचित ठहराने की कोशिशों को कारगर चुनौती देने में सफल नहीं हो पाते। सीमांत उत्पादकता के सिद्धांतों की सीमाओं से अवगत होने के बावजूद वे सजीव श्रम की (उसके बेमोल श्रमकाल की) पूँजी की प्रतिप्राप्ति में किसी भी भूमिका से इंकार करते हैं। वे लिखते हैं, 'व्यापक रूप से कहा जाए तो केंद्रीय तथ्य यह है कि पूँजी पर प्रतिप्राप्ति प्राय: (आर्थिक विकास के लिए निहायत ज़रूरी) सच्चे उद्यमी श्रम, (एक सम्भावनापूर्ण सम्पत्ति को अच्छी क़ीमत और सही समय पर ख़रीदने की स्थिति में होने के) शुद्ध सौभाग्य, और खुले रूप में चोरी के तत्वों का जटिल सम्मिलन होती है।'[35]

पूँजी का अतिक्रमण

पिकेटी इस बात से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं कि :

> इसकी कोई गारंटी नहीं है कि विरासती पूँजी का वितरण विषमता को इक्कीसवीं सदी में उस सीमा तक नहीं बढ़ा देगा जिस सीमा तक वह उन्नीसवीं सदी में जा पहुँचा था। ... ऐसी कोई अनिवार्य शक्ति नहीं है जो पूँजी पर प्रतिप्राप्ति को पूँजी के चरम संकेंद्रण तक जा पहुँचने से रोक दे। ... 2008 का संकट इक्कीसवीं सदी के वैश्विक विरासती पूँजीवाद का पहला संकट था। यह अंतिम था, ऐसी कोई सम्भावना नहीं।

---

[33] वही, चैप्टर अध्याय-7, 'इनईक्वालिटी ऑफ़ टोटल इनकम : टू वर्ल्ड्स'.

[34] वही, अध्याय-11, 'मेरिट ऐंड इनहेरिटेंस इन द लांग रन' / 'मेरिटोक्रेटिक एक्सट्रीमिज़म इन वेल्दी सोसायटीज'.

[35] वही, अध्याय-12, 'ग्लोबल इनइक्वलिटी ऑफ़ वेल्थ इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी' / 'द मोरल हायरार्की ऑफ़ वेल्थ'.

चूँकि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की सीमाओं में सम्पत्ति के संकेंद्रण और तद्‌जनित संकट की समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता, इसलिए पिकेटी 'पूँजीवाद के अतिक्रमण' की भी कल्पना करते हैं :

> इक्कीसवीं सदी में क्या हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण और स्थायी रूप में पूँजीवाद का अतिक्रमण किया जा सकेगा ? या फिर हमें बस अगले संकट या (इस बार सचमुच के वैश्विक) अगले युद्ध का इंतज़ार करना चाहिए ?[36]

वे आगे लिखते हैं :

> पूँजी की समस्या का जो समाधान कार्ल मार्क्स और 19वीं सदी के अन्य समाजवादी लेखकों ने सुझाया था, और जिसे 20वीं सदी में सोवियत संघ में अमली जामा पहनाया गया, वह काफ़ी ज़्यादा रैडिकल था, तथा, और कुछ नहीं तो, तार्किक रूप से ज़्यादा सुसंगत था। ... उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का उन्मूलन कर सोवियत प्रयोग ने साथ-ही-साथ पूँजी पर तमाम निजी प्रतिप्राप्ति का भी ख़ात्मा कर दिया। ... लोगों (अथवा मज़दूरों) ने आख़िरकार संचित सम्पत्ति के बोझ के साथ अपनी जंजीरों को उतार फेंका। वर्तमान ने अतीत के ऊपर अपने अधिकारों की दावेदारी पेश की। असमानता $r > g$ अब कुछ नहीं बस बुरी स्मृति बन के रह गयी, ख़ासकर इसलिए भी कि कम्युनिज़म ने संवृद्धि और प्रौद्योगिकीय प्रगति के प्रति अपना लगाव खुल कर ज़ाहिर किया। ... समस्या यह थी कि निजी सम्पत्ति और बाज़ार अर्थव्यवस्था उन लोगों के ऊपर जिनके पास अपनी श्रम-शक्ति बेचने के सिवा कुछ नहीं है, पूँजी के प्रभुत्व की ही गारंटी नहीं करता, बल्कि लाखों लोगों की कार्यवाहियों को समन्वित करने में भी उपयोगी भूमिका निभाता है।[37]

यहाँ हम 'पूँजीवाद के अतिक्रमण' से संबंधित सोवियत प्रयोग की पड़ताल में नहीं जा सकते। सवाल है कि मार्क्स और अन्य समाजवादियों के सुझावों को तार्किक रूप से संगतिपूर्ण पाने के बावजूद, पिकेटी सोवियत प्रयोग की विफलता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, ख़ुद 'पूँजीवाद के अतिक्रमण' के चुनौतीपूर्ण क्षेत्र में क़दम रखने से इंकार कर देते हैं। अतीत के अनुभवों के आधार पर कोई नयी अंतर्दृष्टि प्रस्तुत करने और किसी तरह का नया प्रयोग सुझाने के बजाय, वे इस विकल्प का दरवाज़ा ही बंद कर देते हैं। दूसरे विकल्प, यानी पूँजीवाद को स्थिर, संतुलित और सामंजस्यपूर्ण बनाने के विकल्प को तो वे पहले ही तिलांजलि दे चुके हैं। वे बार-बार यह स्पष्ट करते रहते हैं कि ऐसे किसी भ्रमजाल में उनका कोई विश्वास नहीं है। पूँजीवाद को स्थिर, संतुलित और सामंजस्यपूर्ण बनाने के, पिछली तीन शताब्दियों के दौरान, जितने प्रयोग हुए, वे सबके सब और भी ज़्यादा अनर्थकारी और विध्वंसक साबित हुए। इस मामले में भी पिकेटी किसी नये प्रयोग की कोशिश नहीं करना चाहते। तब क्या किया जाना चाहिए ? एक स्थिर, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण पूँजीवाद असम्भव है, और पूँजीवाद का अतिक्रमण भी व्यावहारिक नहीं है। ऐसी स्थिति में पिकेटी सुझाते हैं कि चलिए, पूँजीवाद जिस तरह से काम करता है, उसे करने दीजिए— बस उसे इस तरह नियमित और नियंत्रित कीजिए कि वह अपने हिंसक अंत का सामना करने से बच जाए। वे नियंत्रित पूँजीवाद की— बेलगाम होती पूँजी को साधने की हिमायत करते हैं। सम्भवत: अतीत के विरासती सामंतवाद की तरह, 'विरासती पूँजीवाद' के भविष्य से उन्होंने समझौता कर लिया है, और वे उसे बस 'अति-विरासती समाज' में विकसित होने से रोकना चाहते हैं।

इसे रोकने का, उनकी नज़र में, एक रास्ता है; और वह है पूँजी पर वैश्विक प्रगतिशील करारोपण।

पूँजी पर प्रगतिशील वैश्विक कर

वे लिखते हैं :

> निजी पूँजी और उस पर प्रतिप्राप्ति की शाश्वत समस्या का सबसे कम हिंसात्मक और ज़्यादा

---

[36] वही, अध्याय-13, 'ए सोशल स्टेट फ़ॉर द ट्वेंटी फ़र्स्ट सेंचुरी'.

[37] वही, अध्याय-15, 'ए ग्लोबल टैक्स ऑन कैपिटल'.

मिस्टर पिकेटी, आपको धन्यवाद। ये वास्तविकताएँ उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए पर्याप्त सबक़ मुहैया कराती हैं। बेशक, भारत के लिए भी, जहाँ शिकागो स्कूल के उत्साही पैरोकारों के समर्थन से **शासक वर्ग प्रतिगामी, विभाजनकारी हिंदुत्ववादी एजेंडे के साथ शीर्ष एक प्रतिशत के हित में नव-उदारतावादी सुधारों की श्रृंखला को तत्परतापूर्वक आगे बढ़ाने में लगा है।**
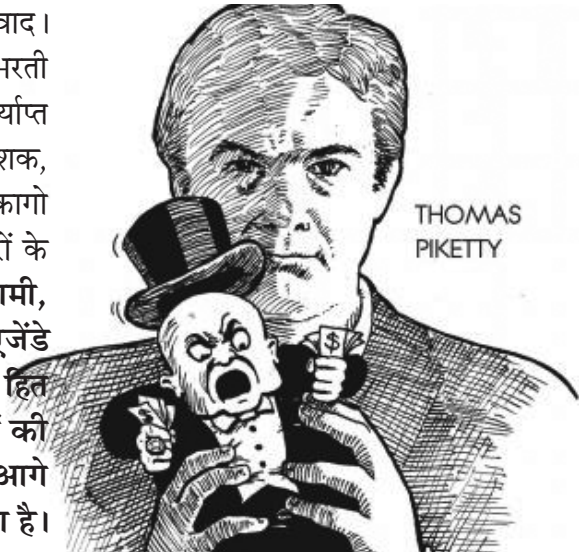
> प्रभावशाली जवाब पूँजी पर कर होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति पर प्रगतिशील लेवी के ज़रिये निजी पूँजी और प्रतिद्वंद्विता की शक्तियों पर निर्भर करते हुए सार्वजनिक हित के नाम पर पूँजीवाद पर नियंत्रण को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। ... यदि जनतंत्र को इस शताब्दी के वैश्विक वित्तीय पूँजीवाद पर फिर से नियंत्रण क़ायम करना है, तो उसे आज की चुनौतियों के अनुरूप नये साधनों का आविष्कार करना होगा। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पारदर्शिता के काफ़ी ऊँचे मानदण्डों के साथ पूँजी पर प्रगतिशील वैश्विक कर आदर्श साधन हो सकता है। ऐसा कर असमानता के अंतहीन चक्र से बचने और पूँजी के वैश्विक संकेंद्रण की चिंताजनक गतिकी पर नियंत्रण क़ायम करने का एक उपाय हो सकता है।[38] .... प्रगतिशील कर इस प्रकार सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच एक आदर्श सामंजस्य का प्रतिनिधित्व करता है।[39]

पिकेटी इस प्रस्ताव की सीमाओं से अवगत हैं। बहरहाल, उनके लिए, एक स्थिर, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण पूँजीवाद यूटोपिया है, पूँजीवाद का अतिक्रमण भी यूटोपिया है, लेकिन पूँजी पर वैश्विक प्रगतिशील कर का उनका प्रस्ताव कोशिश करने लायक़ एक उपयोगी यूटोपिया है।

तीन शताब्दियों के वस्तुगत आँकड़े पूँजी संचय की गति के बारे में स्पष्ट तौर पर ज़रूरी सबक़ प्रदान करते हैं। इन सबकों को और आगे बढ़ाने की जगह पिकेटी एक उपयोगी यूटोपिया पर आकर ठहर जाते हैं। पिकेटी के हाथों डाटा का एक भ्रांतिमूलक यूटोपिया में पतन घटित होता है।

शताब्दी : बीसवीं और इक्कीसवीं

बीसवीं शताब्दी कुछ युगांतरकारी प्रगतियों की शताब्दी थी। इसने मानवजाति के इतिहास में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। ये विकास इक्कीसवीं सदी में आकार लेने वाली चीज़ों को समझने की कुंजी प्रदान करते हैं। इसलिए इन विकासों पर एक सरसरी निगाह डालना अप्रासंगिक नहीं होगा।

मशीनीकरण और उसका परिणाम

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में द्वितीय औद्योगिक क्रांति ने 1870–1913 की अवधि के दौरान बड़े उद्योगों

---

[38] वही.

[39] वही, अध्याय-14, 'रीथिंकिंग द प्रोग्रेसिव इनकम टैक्स'.

के विकास, चौतरफ़ा बढ़ते मशीनीकरण, एकाधिकारी वित्तीय पूँजी और बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रसार, उपनिवेशीकरण की एक नयी लहर, व्यावसायिक प्रबंधकों तथा श्रमिक अभिजन की एक नयी श्रेणी जैसी परिघटनाओं को जन्म दिया। ये विकास बीसवीं सदी के पूँजीवाद की चारित्रिक विशेषताएँ बन गयीं। इसके अलावा, इसी शताब्दी में विकसित देशों में सैन्य-औद्योगिक गठजोड़ ने कूटनीति और घरेलू राजनीति में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अर्जित कर ली।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए हम यहाँ मशीनीकरण की परिणति के बारे में एक संक्षिप्त चर्चा ज़रूरी समझते हैं।

> बड़े उद्योग के विकास की एक सीमा के बाद, वास्तविक सम्पत्ति का निर्माण नियोजित श्रम की मात्रा और श्रमकाल पर कम से कम निर्भर होता जाता है। वह तो अधिकाधिक श्रमकाल के दौरान क्रियाशील की गयी एजेंसियों की शक्ति पर निर्भर होता जाता है। उन एजेंसियों (मशीनरी) की 'शक्तिशाली क्षमता' भी अपने उत्पादन पर लगे प्रत्यक्ष श्रमकाल की तुलना में विज्ञान की आम स्थिति, टेकनॉलॉजी की प्रगति अथवा उत्पादन में विज्ञान के प्रयोग पर अधिकाधिक निर्भर होती जाती है। ...
>
> प्रकृति कोई मशीन नहीं बनाती, न इंजन, न रेलगाड़ी, न विद्युत टेलीग्राफ़ न स्वचालित यंत्र, आदि। वे मानवीय उद्यम के उत्पाद हैं; वे प्रकृति के ऊपर मानवीय इच्छाशक्ति के, अथवा प्रकृति में मानवीय भागीदारी के अंग के रूप में रूपांतरित प्राकृतिक संसाधन हैं। वे मानवीय हाथों द्वारा सृजित मानव मस्तिष्क के साधन हैं। ज्ञान की शक्ति मूर्तिमान। स्थिर पूँजी (फ़िक्सड कैपिटल, मशीनरी, आदि) का विकास इस बात का सूचक है कि आम सामाजिक ज्ञान किस मात्रा में प्रत्यक्ष उत्पादन शक्ति बन गया है। और इसलिए, सामाजिक जीवन प्रक्रिया की स्थितियाँ ख़ुद किस हद तक आम बुद्धि के नियंत्रण में आ चुकी हैं और उसके अनुरूप ढल चुकी हैं। ...[40]

स्मरण रहे कि मार्क्स ने ये पंक्तियाँ 156 वर्ष पहले लिखी थीं। पिकेटी को इस उद्धरण पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि उन्होंने लिखा है, 'आज हम यह जानते हैं कि दीर्घकालीन संरचनागत विकास केवल उत्पादक विकास के चलते सम्भव है। लेकिन मार्क्स के समय यह स्पष्ट नहीं था। ऐसा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और बेहतर आँकड़ों के अभाव के कारण था। ... उत्पादकता के स्थायी और टिकाऊ विकास से चालित संरचनात्मक संवृद्धि का विचार ... मार्क्स के मन में स्पष्टत: चिह्नित और सूत्रबद्ध नहीं था।'[41]

विज्ञान और तकनीक में क्रांति

बीसवीं सदी के पहले दशक में ही दो जर्मन वैज्ञानिकों ने परमाण्विक-उप परमाण्विक प्रक्रिया और साथ-ही-साथ दिक् और काल के बारे में हमारी समझ को क्रांतिकारी रूप से बदल डाला, और इस प्रकार एक नयी वैज्ञानिक-प्रौद्योगिकीय क्रांति की नींव रखी। इसने आने वाले दशकों में हमारे जीवन-जगत को— सोचने, पढ़ने, लिखने, शोध, उत्पादन और व्यवसाय, डिजाइन, दूकान, प्रबंध, संचार, मुहिम, बचत, निवेश, वित्त, जासूसी, युद्ध और शांति, प्यार और घृणा, मित्रता और शत्रुता, खेल और मनोरंजन, आदि को— आमूलचूल बदल कर रख दिया।

14 दिसम्बर, 1900 को मैक्स प्लांक ने अपना क्वाण्टम सिद्धांत प्रस्तुत किया, और 1905 में अल्बर्ट आइंसटीन ने अपने सापेक्षता के विशेष सिद्धांत का प्रतिपादन किया (और 1916 में सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत का)। इसके बाद तो आविष्कार-अन्वेषण-अभिनव प्रवर्तन का सिलसिला ही शुरू हो गया। यांत्रिक-नियतिवादी न्यूटोनियन विश्व-दृष्टि को स्थानापन्न कर सापेक्षता-सम्भाव्यता-अनिश्चितता की एक नयी

---

[40] कार्ल मार्क्स (1981), 'ग्रूडिंसे : फाउण्डेशंस ऑफ़ द क्रिटीक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी', (रफ़ ड्राफ़्ट), पेंगुइन बुक्स इन एसोसिएशन विद न्यू लेफ़्ट रिव्यू, मिडलसेक्स, इंग्लैण्ड, भूमिका और अनुवाद : मार्टिन निकोलॉस, नोटबुक VII, 'द चैप्टर ऑन कैपिटल (कंटीनुएशन)' : 704, 705-6.

[41] पिकेटी, अध्याय-6, 'द कैपिटल-लेबर स्प्लिट इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी' / 'बैक टु मार्क्स ऐंड द फ़ॉलिंग रेट ऑफ़ प्रोफ़िट'.

विश्व-दृष्टि ने जगह बनानी शुरू कर दी। मानविकी के सभी ज्ञानानुशासन भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। स्मरण रहे, विज्ञान में यह युगांतरकारी क्रांति उस समय हो रही थी जब पूँजीवाद गम्भीर धक्कों का सामना कर रहा था (पिकेटी ने 1913-1950 के बीच के काल को 'युरोप की आत्महत्या' के इतिहास, और ख़ासकर 'युरोपीय पूँजीपतियों की इच्छामृत्यु' के काल के रूप में वर्णित किया है)।

कम्प्यूटर क्रांति और ज्ञान अर्थव्यवस्था

विज्ञान में क्रांति ने बीसवीं सदी के दूसरे अर्धांश में कम्प्यूटर क्रांति को जन्म दिया। इस कम्प्यूटर क्रांति ने औद्योगिक और वित्तीय पूँजी के उत्पादन, संगठन और प्रबंधन की पुनर्रचना को आवश्यक बना दिया। इसके साथ ही इसने अनेक नये वित्तीय उपकरणों को जन्म दिया। उत्पादन के एक कारक के तौर पर ज्ञान प्रमुखता से उभर कर आया। साथ-साथ ज्ञान अर्थशास्त्र का एक नया ज्ञानानुशासन भी। इसी नये दौर को प्रतिबिम्बित करते हुए 2001 के बसंत में डाउचे बैंक ने *वाल स्ट्रीट जर्नल* में एक बड़ा विज्ञापन दिया : 'विचार पूँजी है। बाक़ी सब बस धन।'

नया समय

मशीनीकरण, वैज्ञानिक-प्रौद्योगिकीय क्रांति और कम्प्यूटर क्रांति ने बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में एक नये युग का सूत्रपात किया— ख़ासकर उसके अंतिम दशक से जब कम्प्यूटर क्रांति से उत्पन्न नये उपकरणों और सेवाओं के उपभोग ने जनव्यापी परिघटना का रूप ले लिया। इस विकास को विभिन्न विचारकों और लेखकों ने अपने-अपने ढंग से वर्णित किया है। कुछ इसे 'कैपिटल 3.0' के रूप में, तो कुछ इसे 'ज्ञान समाज', अथवा 'डिजिटल युग' के रूप में परिभाषित करते हैं।

इस नये युग को इसकी दो विशिष्ट लाक्षणिकताओं से समझा जा सकता है। पहला, नयी अर्थव्यवस्था ने उद्योग तथा वित्त के पुनर्संगठन को तो अंजाम दिया ही, इसने अपने गैजेट्स, एप्स और सेवाओं के ज़रिये सामाजिक रूप से उपलब्ध मुक्त समय (ख़ाली समय) पर भी अपना नियंत्रण और प्रभुत्व क़ायम कर लिया है। (औद्योगिक पूँजी सामाजिक रूप से उपलब्ध श्रमकाल पर अपना नियंत्रण और प्रभुत्व क़ायम करती है और वित्तीय पूँजी सामाजिक रूप से उपलब्ध बचत पर।) दूसरा, यह नयी अर्थव्यवस्था हमारे जीवन के तौर-तरीक़ों को बदल रही है। इस परिवर्तन को मापने का सबसे सटीक तरीक़ा है यह देखना कि हम अपना समय कैसे व्यतीत करते हैं। आज दुनिया में अरबों लोग अपने समय का महत्त्वपूर्ण हिस्सा कम्प्यूटर अथवा स्मार्टफ़ोन पर व्यतीत करते हैं। यह नयी अर्थव्यवस्था इतिहास में अभूतपूर्व रफ़्तार से धन पैदा कर रही है, और नये अरबपतियों और नयी असमानताओं को जन्म दे रही है। बहरहाल, यह अब तक सबसे कम कर देने वाला क्षेत्र बना हुआ है। दरअसल, डिजिटल अर्थव्यवस्था को कर के दायरे में लाने की प्रणाली ही अब तक विकसित नहीं हो पाई है।[42]

यहाँ इस नयी अर्थव्यवस्था और नये समाज के विकास के (सकारात्मक तथा नकारात्मक) निहितार्थों में और इस प्रणाली में अंतर्निहित अंतर्विरोधों में जाना सम्भव नहीं है। भूमि और पूँजी के साम्राज्य के बाद हम अब एक ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जिसके वर्चस्वशाली समूह 'मन के साम्राज्य' की स्थापना करना चाहते हैं।[43]

---

[42] निकोलस कोलिन (2013), 'कॉरपोरेट टैक्स 2.0 : व्हाइ फ्रांस ऐंड द वर्ल्ड लीड ए न्यू टैक्स सिस्टम फ़ॉर द डिजिटल एज', http://www.forbes.com/sites/singularity/2013/01/28corporate-tax-2-0-why-france-and-the-world-need-a-new-tax-system-for-the-digital-age/.

[43] जूलियन असांज (2014), 'गूगल इज नॉट व्हाट इट सीम्स',wikileaks.org/google-is-not-what-it-seems/, गूगल के चेयरपरसन एरिक स्मिट और गूगल आइडियाज़ के निदेशक जरेड कोहेन ने अपनी लिखी जाने वाली किताब का नाम 'दि एम्पायर ऑफ़ द माइंड' सोच रखा था. बहरहाल जब अप्रैल 2013 में किताब प्रकाशित होकर आयी तो उसका बदला हुआ नाम था 'दि न्यू डिजिटल एज : रीशेपिंग द फ़्यूचर ऑफ़ पीपल, नेशंस ऐंड बिजनेस'.

मुक्त समय और 'अधिकारों का तर्क'

यदि पूँजी/आय (β) 6 है (यानी कुल पूँजी 6 वर्षों की राष्ट्रीय आय के बराबर है) तो इसका मतलब है कि छह वर्षों का मुक्त समय पूँजी ने अपने शिकंजे में ले रखा है। स्वभावत:, इस मुक्त समय को पूँजी के चंगुल से मुक्त करने के लिए आंदोलन होंगे— श्रम काल में और कमी की माँग होगी।

इसी माँग का दूसरा आयाम यह है कि अनेक मालों और सेवाओं को विनिमय के दायरे से बाहर निकाल लाने की माँगें भी उठेंगी। दूसरे शब्दों में, कुछ आवश्यक जिंसों तथा सेवाओं को अधिकार के रूप में मुफ़्त में हासिल करने की माँग होगी। खाद्यान्न का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य सेवाओं का अधिकार, डिजिटल अधिकार, आदि की माँगों का मतलब है मुफ़्त खाद्यान्न, मुफ़्त शिक्षा, मुफ़्त स्वास्थ्य सेवाएँ, मुफ़्त इंटरनेट सेवाएँ, आदि। इन अधिकारों को वैधानिक मान्यता मिलने का मतलब है कि इन अधिकारों से लोगों को वंचित करने की स्थिति में जनता को इन जिंसों तथा सेवाओं को मुफ़्त में हासिल करने के लिए विद्रोह करने का भी अधिकार हासिल है।

चूँकि विनिमय की अर्थव्यवस्था साथ-साथ विद्यमान है, इसलिए अनेक विकृतियाँ, 'लीकेज', और अन्य जटिलताएँ भी उत्पन्न होंगी। लेकिन यहाँ महत्त्वपूर्ण बात कुछ जिंसों और सेवाओं को मुफ़्त में हासिल करने के अधिकार की स्वीकृति है। पिकेटी इसे अधिकारों के तर्क को केंद्रस्थ करने के ज़रिये स्थापित आधुनिक पुनर्वितरण कहते हैं।[44]

बहरहाल, यहाँ ख़ासकर मुफ़्त इंटरनेट सेवाओं के बारे में यह समझना ज़रूरी है कि नेट पर महज़ अपनी उपस्थिति और गतिविधियों के द्वारा ही उपभोक्ता/उपयोगकर्ता कहीं अधिक मूल्य चुका देता है— उसके द्वारा दी गयी सूचनाएँ (डाटा) अज्ञात लोगों और इंटरनेट कंपनियों द्वारा माल के रूप में बेची जाती हैं, और उन्हें आगे प्रदान की जाने वाली सूचनाओं का स्वरूप भी तय करती हैं।

चीन का उभार

बीसवीं सदी के अंत और इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक दशक में एक आर्थिक शक्ति के रूप में चीन का उत्थान भी वर्तमान शताब्दी के स्वरूप को विभिन्न रूपों में व्यापक तौर पर प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण विकास है। सदियों से चले आ रहे पश्चिमी वर्चस्व को पहली बार (सबसे बड़ी आबादी वाले) एशियाई देश से कड़ी चुनौती मिल रही है। 'काफ़ी बेचैनी के साथ ही सही, पश्चिम उत्तरोत्तर यह अनुभव कर रहा है कि दुनिया अब पश्चिमी नहीं रही।'[45]

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण विकासों का हम यहाँ ज़िक्र नहीं कर रहे हैं। पिकेटी इनमें से कुछ की विस्तार से चर्चा करते हैं, जैसे कि जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण ह्रास, आदि से संबंधित विकास।

बहरहाल, पिकेटी बीसवीं सदी के ऊपर वर्णित महत्त्वपूर्ण विकासों की जो इक्कीसवीं सदी में अर्थव्यवस्था तथा समाज के रूपांतरण में अहम भूमिका निभा रहे हैं, अपनी किताब में ख़ास चर्चा नहीं करते। वे 'नये समय' के साथ मुठभेड़ से बचते नज़र आते हैं। इसलिए किताब की सार-वस्तु किताब के शीर्षक *कैपिटल इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी* को उचित सिद्ध नहीं करती। उसका उपयुक्त शीर्षक होना चाहिए था, 'इनइक्वालिटी इन द एज ऑफ़ कैपिटल'।

कोई भी किताब पूर्ण नहीं होती, न ही कुछेक असंगतियों से मुक्त। थोड़ी अपूर्णता, थोड़ी असंगति किसी भी किताब का अंग होती है— यह उन लोगों के लिए जो विषय को और आगे बढ़ाना चाहते हैं, नयी खोजों और नयी व्याख्याओं के लिए दरवाज़ा खुला छोड़ देता है। मैंने जिस चीज़ पर ज़ोर दिया है, वह किताब की (उसके तर्कों तथा प्रस्थापनाओं की) कुछ बुनियादी विसंगतियाँ हैं।

---

[44] पिकेटी, अध्याय-13, 'ए सोशल स्टेट फ़ॉर द ट्वेंटी फ़र्स्ट सेंचुरी'.

[45] मार्टीन जेक्वा (2009).

हाँ मार्क्स, ना मार्क्स

एक सौ सैंतालिस साल पहले (सितम्बर 1867 में) कार्ल मार्क्स की कृति *कैपिटल* के पहले खण्ड के प्रकाशन के समय से ही अर्थशास्त्री उसका जवाब ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ ने तो ऐसा करने का दावा भी किया। बहरहाल, इस कार्यभार को पूरा करने में वे बुरी तरह असफल होते रहे हैं। फिर भी यह परम्परा उत्साह के साथ अब तक जारी है।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों (ख़ासकर 1870 के दशक से 1890 के दशक) के दौरान मूल्य के शास्त्रीय श्रम सिद्धांत, ख़ासकर मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत को अर्थशास्त्र के क्षेत्र से धो-पोंछकर साफ़ कर देने की ज़बर्दस्त कोशिशें हुईं। इस सफ़ाई के बाद जो शेष रह गया, वह था 'शुद्ध अर्थशास्त्र'। यह शुद्ध अर्थशास्त्र कुछ 'स्कूलों' में संरक्षित हुआ— ऑस्ट्रियन स्कूल (कार्ल मेंगर, फ्रेड्रिक वॉन वाइज़र, यूजेन बोहम-बेवर्क, आदि), गणितीय स्कूल (लियोन वालरा, विलियम एस. जेवंस), अमेरिकन स्कूल (जॉन बी. क्लार्क), और केम्ब्रिज स्कूल (अल्फ्रेड मार्शल, ऑर्थर सी. पीजू)।

मार्क्स का जवाब ढूँढ़ने की इसी कोशिश में, 1920 के दशक में जर्मन अर्थशास्त्री वर्नर सोम्बार्ट ने विभिन्न प्रणालियों के सह-अस्तित्व के ज़रिये समाज के क्रम-विकास की व्याख्या करते हुए सामाजिक बहुलतावाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। ऐसा करते हुए वे एक दूसरे जर्मन अर्थशास्त्री अडोल्फ़ वॉन वेग्नर के 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' वाले सिद्धांत को ही आगे बढ़ा रहे थे।

1940 के दशक में 'कैपिटलिज़म, सोशलिज़म ऐंड डेमोक्रेसी' किताब लिखते हुए जोसेफ शुमपीटर भी मार्क्स से ही जूझ रहे थे। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के दशकों में अमेरिकन अर्थशास्त्री जॉन कैनेथ गैलब्रेथ, पितरिम सोरोकिन, और डच अर्थशास्त्री जान टिनवर्जेन ने 'कन्वर्जेंस (समाभिरूपता) के सिद्धांत' की वकालत की। उनके अनुसार, समाजवाद और पूँजीवाद के क्रम-विकास और उनके एक-दूसरे में रूपांतरण के परिणामस्वरूप दोनों सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों की सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं से लैस एक तथाकथित सार्विक समाज का उदय होगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि जब वे 'कंवर्जेंस' पर चिंतन कर रहे थे तो उनके मस्तिष्क में बार-बार मार्क्स की छवि ही कौंध रही थी।

यहाँ मार्क्स का जवाब ढूँढ़ने की कोशिशों के इतिहास में जाना ज़रूरी नहीं है। लेकिन इस संदर्भ में जॉन मेनार्ड कींस का ज़िक्र न करना अनुचित होगा। कींस को मार्क्स का जवाब मिला निराले, अनुचित रूप से उपेक्षित उपदेशक सिल्वियो गेसेल (1862-1930) के रूप में। गेसेल की रचना द *नेचुरल इकॉनॉमिक ऑर्डर* (अंग्रेज़ी में) 1916 के आसपास आयी थी और कींस इससे अत्यंत प्रभावित थे। अप्रैल, 1919 में जर्मन प्रदेश बेवेरिया के अल्पजीवी सोवियत कैबिनेट में गेसेल वित्त मंत्री रह चुके थे और बाद में उन्हें कोर्ट मार्शल का भी सामना करना पड़ा था। आगे चल कर वे कुछ हद तक धार्मिक तेवर वाले एक सम्प्रदाय के उपदेशक बन गये। कींस लिखते हैं, '(गेसेल की) किताब को कुल मिलाकर एक मार्क्स-विरोधी समाजवाद की प्रस्थापना के रूप में देखा जा सकता है। ... मेरा विश्वास है कि भविष्य मार्क्स के बजाय गेसेल की सीख से अधिक शिक्षा ग्रहण करेगा। द *नेचुरल इकॉनॉमिक ऑर्डर* की प्रस्तावना पाठकों को ... गेसेल की नैतिक क्षमता का साक्षात् कराती है। मेरी समझ से मार्क्स का जवाब इसी प्रस्तावना की पंक्तियों में पाया जा सकता है।'[46]

कींस की इच्छा के विपरीत आज (पिकेटी समेत) कोई भी गेसेल और उनकी किताब की प्रस्तावना को याद नहीं करता। गेसेल भुला दिये गये, लेकिन मार्क्स आज भी इक्कीसवीं सदी के अर्थशास्त्रियों के मन-मस्तिष्क में अपनी जगह बनाए हुए हैं।

---

[46] जॉन मेनार्ड कींस (2003), द *जनरल थियरी ऑफ़ एम्प्लॉयमेंट, इंटेरेस्ट ऐंड मनी* (1936), अध्याय-23, 'नोट्स ऑन मरकेंटिलिज़म, द यूसुरी लॉज, स्टाम्प्ड मनी ऐंड थियरीज ऑफ़ अण्डरकंजम्प्शन', अ प्रोजेक्ट गुटेनबर्ग ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया ईबुक, फ़रवरी, 2003.

थॉमस पिकेटी की किताब पर शुरू से अंत तक मार्क्स की लम्बी छाया साफ़ दिखती है। प्रत्येक बिंदु पर, अपने निष्कर्ष प्रतिपादित करने से पहले वे मार्क्स को याद करते हैं, उन्हें उद्‌धृत करते हैं, लेकिन तुरंत पीछे हट जाते हैं। मार्क्स का जवाब पाने की वे श्रमसाध्य कोशिश करते हैं, लेकिन उन्हें भी असफलता ही हाथ लगती है। ऐसा करने वाले न वे प्रथम व्यक्ति हैं, न ही अंतिम। पिकेटी की 'हाँ मार्क्स, ना मार्क्स' की इस दुविधा का हम पहले अनेक अवसरों पर ज़िक्र कर चुके हैं— यहाँ और उसके विस्तार की ज़रूरत नहीं है।

बहरहाल, मार्क्स के प्रति पिकेटी की एक शिकायत का ज़िक्र करना बचा रह जाता है। वे कहते हैं, 'इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके (मार्क्स के) पास अपने पूर्वानुमानों को परिष्कृत करने के लिए आवश्यक सांख्यिकी आँकड़े नहीं थे। अपने निष्कर्षों को सही ठहराने के लिए ज़रूरी अनुसंधान करने से पहले ही 1848 में वे उन तक (निष्कर्षों तक) जा पहुँचे थे। ... '[47] वे आगे कहते हैं कि महत्त्वपूर्ण अंत:प्रज्ञा के बावजूद मार्क्स प्राय: काफ़ी हद तक उपलब्ध आँकड़ों के प्रति क़िस्सात्मक और अव्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाते हैं।[48]

जिन दी गयी परिस्थितियों में मार्क्स को काम करना पड़ा था, उसे देखते हुए यह तो माना जा सकता है कि कुछ उपलब्ध आँकड़े उनसे छूट गये हों। लेकिन जो भी उनकी रचनाओं— *ग्रुंडिसे, कैपिटल, अ कंट्रीब्युशन टू द क्रिटिक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी, थियरीज ऑफ़ सरप्लस वैल्यू* आदि से परिचित है, वह कदाचित् ही पिकेटी के आकलन से सहमत हो। दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं— एक तो जिस हद तक सम्भव था, उस हद तक आँकड़ों को एकत्रित करने और उनका विश्लेषण करने की मार्क्स श्रमसाध्य कोशिश करते थे। दूसरी बात यह कि उन्होंने उन दिनों प्रचलित लगभग सभी विचार-प्रणालियों की विस्तृत आलोचनात्मक समीक्षा की थी। उनके समय में कोई भी किताब उनके विपुल लेखन के आसपास भी नहीं ठहरती।

मार्क्स के लेखन में शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के लगभग सभी प्रमुख व्यक्तियों की काफ़ी विस्तृत आलोचनात्मक समीक्षा मिलती है— विलियम पेट्टी, ब्यॉयगिलेबर, बेंजामिन फ्रैंकलिन, फ्रांस्वा क्वेसने, ऐंडरसन, जेम्स स्टीअर्ट, कोण्डिलैक, ऐडम स्मिथ, एफ.एम. इडेन, टाउनसेंड, वेलेस, माल्थस, बेंथम, रिकार्डो, जेम्स और जॉन स्टुअर्ट मिल, विल्हेम रोशर, जॉर्ज रेमसे, जे.बी. सेय, कोब्बेट, रॉडबर्टस, हॉपकिन्स, सिस्मौंदी, विलियम कैरी, वेस्तिएत आदि।

पिकेटी के आकलन के विपरीत, देखिए बर्ट्रेंड रसेल इस संदर्भ में मार्क्स के बारे में क्या कहते हैं, 'वे (मार्क्स) हमेशा साक्ष्यों के आधार पर समर्थन की माँग करने को उत्सुक रहते थे, और ग़ैर-वैज्ञानिक अंतर्बोध पर क़तई निर्भर नहीं करते थे।'[49]

मार्क्स की 'पूँजी' को 'चुप्पी के षड्‌यंत्र' का सामना करना पड़ा। इस षड्‌यंत्र को भेदने के लिए कुगलमैन और एंगेल्स को काफ़ी मशक़्क़त करनी पड़ी। कुगलमैन को एंगेल्स द्वारा लिखी गयी समीक्षाओं को अज्ञात नामों से विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने की व्यवस्था करनी पड़ी। लेकिन शीघ्र ही यह किताब श्रमिक वर्ग/समाजवादी/कम्युनिस्ट आंदोलन से आवयविक रूप से जुड़ गयी।

पिकेटी की किताब छपते ही 'हिट' हो गयी, 'बेस्ट सेलर' की श्रेणी में दाख़िल हो गयी। अमेरिका में 'ऑकुपाय' तथा यूरोप में अर्जित अधिकारों तथा सुधारों में कटौती के ख़िलाफ़ आंदोलन की पृष्ठभूमि में सक्रिय लोकप्रिय भावनाओं का लाभ उठाने की प्रकाशकों की 'मार्केटिंग' रणनीति पर मैं यहाँ चर्चा नहीं करूँगा। प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रमुखता से प्रकाशित समीक्षाओं में पिकेटी की तुलना मार्क्स की

---

[47] पिकेटी, 'इंट्रोडक्शन'.

[48] वही, अध्याय-6, 'इनईक्वलिटी ऐंड कनसंट्रेशन : प्रीलिमिनरी बियरिंग्स'.

[49] बर्ट्रेंड रसेल (1967) : 749.

'पूँजी' से करते हुए उसे भ्रामक रूप में 'कैपिटल 2.0' की संज्ञा से विभूषित किया गया। पिकेटी को 'मॉडर्न मार्क्स' अथवा 'बिगर दैन मार्क्स' के रूप में सम्बोधित किया जाना हास्यास्पद ही कहा जाएगा।

जिस किताब को चुप्पी के षड्यंत्र का सामना करना पड़ा, उसकी गूँज इक्कीसवीं सदी के अर्थशास्त्रियों के कानों में अब भी सुनाई दे रही है। बहरहाल, शुरू से ही एक 'ब्लॉकबस्टर' किताब के भविष्य के बारे में हम बस अनुमान ही लगा सकते हैं।

लंदन, शिकागो, पेरिस

राजनीतिक अर्थशास्त्र के शुरुआती काल में ब्रिटिश, फ्रेंच और अमेरिकी अर्थशास्त्री तथा दार्शनिक परिदृश्य पर हावी थे। सत्रहवीं सदी के अंत और अठारहवीं सदी की शुरुआत में इन देशों के बीच की सामाजिक भिन्नता उनके व्यक्तित्व और लेखन में भी प्रकट होती थी। लेकिन शीघ्र ही ऐडम स्मिथ (और उनकी किताब *वेल्थ ऑफ़ नेशंस*) ने शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रतिनिधि के रूप में अपना सर्वप्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया। फ्रेंच और अमेरिकन धाराएँ पृष्ठभूमि में चली गयीं।

मार्क्स की *पूँजी* (जैसाकि उसके उपशीर्षक में दर्ज है) राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना थी। यदि (पिकेटी की तरह) कोई राजनीतिक अर्थशास्त्र की भावना को पुनर्जीवित करना चाहता है, तो उसे राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना की भावना का भी सामना करना होगा। यदि राजनीतिक अर्थशास्त्र नये समय में प्रवेश की चुनौती का सामना कर रहा है, तो राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना के समक्ष भी वही चुनौती है। मात्र पुनर्जीवन से काम नहीं चलेगा।

हम पहले ही देख चुके हैं कि 1870-1920 के बीच बूर्ज़्वा आर्थिक परिदृश्य पर ऑस्ट्रियन स्कूल की विभिन्न शाखाओं ने अपना दबदबा बना रखा था। बीसवीं सदी के शेष दशकों में क्रमश: लंदन स्कूल (कींस) और शिकागो स्कूल (मिल्टन फ्रीडमैन) का वर्चस्व रहा। लेकिन इस दौरान फ्रेंच स्कूल कहाँ था?

पेरिस स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स एक बिल्कुल नया संस्थान है। इसकी स्थापना महज़ आठ वर्ष पूर्व, 21 दिसम्बर, 2006 को पेरिस में हुई। इसका टैगलाइन है 'समाज की सेवा में अर्थशास्त्र', और इसकी पुस्तिका में अर्थशास्त्र को जगाने का संकल्प व्यक्त किया गया है। इस पुस्तिका में संस्थान के लक्ष्य को रेखांकित करते हुए अर्थशास्त्र के खुले प्रश्नों की परम्परागत और नवप्रवर्तनकारी, दोनों लिहाज़ से जाँच-पड़ताल करने की बात कही गयी है : 'उदाहरण के लिए, हमारे अनुसंधानकर्ता यह प्रश्न उठाते हैं कि हम, ख़ासकर संकट की अवधियों के दौरान, वैश्विक आर्थिक-चक्र का नियंत्रण तथा आर्थिक गतिविधियों का प्रबंधन कैसे करें; विकासशील देशों में ग़रीबी कैसे कम करें; बढ़ती असमानता की व्याख्या और उनका मुक़ाबला कैसे करें; स्वास्थ्य, पर्यावरण और शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक नीतियों का मूल्यांकन और उनमें सुधार कैसे करें; और परिबद्ध विवेक के प्रतिमान कैसे स्थापित करें।'[50]

ज़ाहिर है, पिकेटी की किताब पेरिस स्कूल की कार्यसूची का अनुसरण करती है और इस प्रकार सम्भवत: इसका लक्ष्य (लंदन और शिकागो स्कूल से पृथक्) इक्कीसवीं सदी के इस फ्रेंच स्कूल की पहचान स्थापित करना है। क्या यह सदियों की गुमनामी से राजनीतिक अर्थशास्त्र के फ्रेंच स्कूल को बाहर निकाल पाएगा ? क्या यह स्कूल अमेरिकी अर्थशास्त्रियों के संरक्षण से फ्रेंच अर्थशास्त्रियों को मुक्त कर सकेगा ?

स्मरण रहे, इस शताब्दी में उभरती अर्थव्यवस्थाओं (चीन, भारत, ब्राज़ील, आदि) से आने वाली आर्थिक चिंतन की विभिन्न धाराएँ भी आर्थिक विमर्श में अपनी भागीदारी का दावा पेश करेंगी। पिकेटी इस विमर्श को मुख्यत: अमेरिका तथा यूरोप तक ही सीमित रखते हैं।

---

[50] पेरिस स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स की पुस्तिका. यह पुस्तिका संस्थान के वेबसाइट पर उपलब्ध है.

तमाम असंगतियों के बावजूद, थॉमस पिकेटी के प्रति धन्यवाद-ज्ञापन तो बनता ही है। वे इसके सचमुच के हक़दार हैं।

धन्यवाद, मिस्टर पिकेटी

'एक क़िताब को अवश्य ही हमारे अंदर जमी बर्फ़ के
लिए एक कुल्हाड़ी होना चाहिए।' —काफ़्का

दो शताब्दियों तक विस्तीर्ण आँकड़ों द्वारा प्रमाणित निर्विवाद वास्तविकताओं की ओर सुस्पष्ट ढंग से ध्यान खींचने के लिए मिस्टर पिकेटी, आपको धन्यवाद। ये वास्तविकताएँ उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए पर्याप्त सबक़ मुहैया कराती हैं। बेशक, भारत के लिए भी, जहाँ शिकागो स्कूल के उत्साही पैरोकारों के समर्थन से शासक वर्ग प्रतिगामी, विभाजनकारी हिंदुत्ववादी एजेंडे के साथ शीर्ष एक प्रतिशत के हित में नव-उदारतावादी सुधारों की शृंखला को तत्परतापूर्वक आगे बढ़ाने में लगा है। इस किताब के कई अंशों को मैं पहले ही उद्धृत कर चुका हूँ, फिर भी कुछ और अंशों के उद्धरण के साथ इस समीक्षा का समापन करना अच्छा होगा :

■ सम्पत्ति के वितरण का मुद्दा इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और दार्शनिकों के लिए नहीं छोड़ा जा सकता। यह सबकी दिलचस्पी का विषय है और यह सुखद बात है। असमानता की ठोस, भौतिक हक़ीक़त खुली आँखों से दिखाई देती है। ... लोकतंत्र को विशेषज्ञों के गणतंत्र द्वारा विस्थापित नहीं किया जा सकता— और यह भी काफ़ी अच्छी बात है। शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र का जन्म अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ब्रिटेन और फ्रांस में हुआ था। उस समय भी वितरण का प्रश्न सबसे बुनियादी प्रश्नों में से था। ... जब कभी कोई सम्पत्ति के वितरण के बारे में बात करता है, तो राजनीति इससे कभी ज़्यादा अलग नहीं रहती, और समकालीन वर्गीय पूर्वाग्रहों तथा स्वार्थों से बच पाना किसी के लिए भी कठिन होता है।

■ एक निष्कर्ष तो पहले से ही स्पष्ट है; यह सोचना एक भ्रम है कि आर्थिक संवृद्धि के स्वभाव तथा बाज़ार अर्थव्यवस्था के नियमों में ऐसा कुछ है जो सम्पत्ति की असमानता में ह्रास और सामंजस्यपूर्ण स्थिरता की उपलब्धि सुनिश्चित करे।

■ ऐसी कोई स्वाभाविक, स्वत:स्फूर्त प्रक्रिया नहीं है जो अस्थिरकारी, असमानता की शक्तियों को हमेशा के लिए हावी होने से रोक दे। ... किसी भी सूरत में यह रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है कि पूँजी/आय अनुपात की, और साथ ही राष्ट्रीय आय में पूँजी के हिस्से की अनवरत वृद्धि की रोकथाम के लिए किसी आत्म-सुधार वाली प्रणाली का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है।

■ व्यक्तिगत सीमांत उत्पादकता की अवधारणा को परिभाषित करना कठिन है। दरअसल, यह विशुद्ध रूप से एक विचारधारात्मक निर्मिति जैसी कुछ चीज़ है जिसके आधार पर उच्चतर स्थिति को न्यायोचित ठहराया जाता है।

■ आज, इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में, सम्पत्ति की असमानता अपनी ऐतिहासिक ऊँचाइयों को पुन: प्राप्त करने, और यहाँ तक कि उसे भी पार कर जाने के क़रीब पहुँच गयी है।

■ आने वाली दुनिया अतीत की दो बदतर दुनियाओं के मेल से बन सकती है— विरासती सम्पत्ति की महा-असमानता वाली दुनिया, और काफ़ी उच्च वेतनमानों की असमानता वाली दुनिया। इस उच्च वेतनमान को योग्यता और उत्पादकता के आधार पर सही ठहराया जाता है (इन दावों का शायद ही कोई तथ्यात्मक आधार है)। यह योग्यतावादी उग्रवाद सुपर मैनेजरों और किरायाभोगियों के बीच प्रतियोगिता को जन्म देता है, जिसका ख़ामियाजा उन लोगों को भुगतना पड़ता है जो न सुपर मैनेजर हैं और न किरायाभोगी।

■ असमानता पैदा करने वाली बुनियादी शक्ति का बाज़ार की अपूर्णताओं से कुछ लेना–देना नहीं है। बाज़ार को और भी मुक्त तथा प्रतियोगी बनाने से यह शक्ति ग़ायब नहीं हो जाएगी। यह विचार नियंत्रण–मुक्त प्रतियोगिता विरासत का ख़ात्मा कर देगी तथा योग्यता/प्रतिभा आधारित और भी बेहतर दुनिया का मार्ग प्रशस्त करेगी, एक ख़तरनाक भ्रम है। सार्विक मताधिकार के आगमन तथा मतदान के लिए सम्पत्ति की अर्हता की समाप्ति ने राजनीति पर धनिकों के क़ानूनी प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। लेकिन इसने उन आर्थिक शक्तियों का उन्मूलन नहीं किया जिनमें किरायाभोगियों के समाज को जन्म देने का सामर्थ्य है।

■ संगठन और स्वामित्व के नये रूपों की खोज करना अभी बाक़ी है।

■ सच्चा लोकतंत्र और सामाजिक न्याय न सिर्फ़ बाज़ार, संसद और अन्य औपचारिक जनतांत्रिक संस्थाओं की, बल्कि अपनी विशिष्ट संस्थाओं की माँग करता है।

धन्यवाद, मिस्टर पिकेटी !

संदर्भ

कार्ल मार्क्स (1977), *कैपिटल,* खण्ड 1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को.

कार्ल मार्क्स (1981), 'ग्रूंडिसे : फाउण्डेशंस ऑफ़ द क्रिटीक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी', (रफ़ ड्राफ्ट), पेंगुइन बुक्स इन एसोसिएशन विद न्यू लेफ़्ट रिव्यू, मिड्लसेक्स, इंग्लैण्ड, अनुवाद और भूमिका : मार्टिन निकोलॉस.

कार्ल मार्क्स (1983), *पूँजी,* खण्ड 3, (हिंदी संस्करण), प्रगति प्रकाशन, मास्को.

कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स (1987), *कलेक्टेड वर्क्स,* खण्ड 29, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को.

....(1988), *कलेक्टेड वर्क्स,* खण्ड 43, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को.

जॉन मेनार्ड कींस (1936), द *जनरल थियरी ऑफ़ एम्प्लॉयमेंट, इंटेरेस्ट ऐंड मनी,* अ प्रोजेक्ट गुटेनबर्ग ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया ईबुक (2003), फ़रवरी.

जूलियन असांज (2014), 'गूगल इज नॉट व्हाट इट सीम्स',wikileaks.org/google-is-not-what-it-seems/.

टॉमस मन (1999), द *मैजिक माउंटेन,* विंटेज बुक्स, लंदन, मूल जर्मन से एच टी लोवे–पोर्टर द्वारा अनूदित.

थॉमस पिकेटी (2014), *कैपिटल इन द ट्वेंटी–फ़र्स्ट सेंचुरी,* द बेल्कनैप प्रेस ऑफ़ हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, मैसेचुसेट्स, लंदन, मूल फ्रेंच से ऑर्थर गोल्ड हैमर द्वारा.

निकोलस कोलिन (2013), 'कॉरपोरेट टैक्स 2.0 : व्हाइ फ्रांस ऐंड द वर्ल्ड नीड ए न्यू टैक्स सिस्टम फ़ॉर द डिजिटल एज', http://www.forbes.com/sites/singularity/2013/01/28corporate-tax-2-0-why-france-and-the-world-need-a-new-tax-system-for-the-digital-age/

बर्ट्रेंड रसेल (1967), *हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न फिलॉसॉफ़ी,* जॉर्ज अलेन ऐंड अनविन लिमिटेड, लंदन.

मार्टीन जेक्वा (2009), *व्हेन चाइना रूल्स द वर्ल्ड : द ऐंड ऑफ़ द वेस्टर्न वर्ल्ड ऐंड द बर्थ ऑफ़ ए न्यु ग्लोबल ऑर्डर,* द पेंगुइन प्रेस, न्युयॉर्क, (पीडीएफ़).

विक्टर मेयर–शोनबर्गर और केनेथ कुकिएर (2013), *बिग डेटा,* जॉन मरे, लंदन.